इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

BHDC-131
हिंदी साहित्य का इतिहास

खंड

4

आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य

इकाई 12

हिंदी कहानी का विकास–I 5

इकाई 13

हिंदी कहानी का विकास–II 20

इकाई 14

हिंदी उपन्यास का विकास–I 37

इकाई 15

हिंदी उपन्यास का विकास–II 54

इकाई 16

हिंदी नाटक का विकास 73

इकाई 17

हिंदी निबंध का विकास 95

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. मैनेजर पांडेय
बीडी / 8ए, डी.डी.ए. फ्लैट
मुनिरका, नई दिल्ली–110067

प्रो. निर्मला जैन
ए–20 / 17, डी.एल.एफ. सिटी
फेज–1, गुड़गाँव–122002, हरियाणा

प्रो. विश्वनाथ त्रिपाठी
बी–5, एफ.2, दिलशाद गार्डन, दिल्ली–110095

प्रो. हरिमोहन शर्मा
184, कादंबरी अपार्टमेंट, सेक्टर–9, रोहिणी, दिल्ली–110085

प्रो. गोबिंद प्रसाद
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

संकाय सदस्य

प्रो. सत्यकाम, निदेशक
मानविकी विद्यापीठ

प्रो. शत्रुघ्न कुमार

प्रो. स्मिता चतुर्वेदी

प्रो. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

इकाई लेखक	इकाई संख्या
प्रो. सत्यकाम डॉ. राजीव कुमार	12, 13, 14 तथा 15
प्रो. रीतारानी पालीवाल	16
डॉ. वीरेंद्र मेहंदीरत्ता डॉ. नीलम फारूकी	17

पाठ्यक्रम संयोजन और संपादन

प्रो. सत्यकाम
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

संपादन सहयोग

डॉ. राजीव कुमार
परामर्शदाता, हिंदी
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

सचिवालयी सहयोग

श्री शशि रंजन आलोक
सहायक कार्यपालक (डाटा प्रासेसिंग)
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

आवरण

सुश्री अरविन्दर चावला
ए.डी.ए. ग्राफिक्स
नई दिल्ली

सामग्री निर्माण

श्री के. एन. मोहनन
सहायक कुलसचिव (प्रकाशन), सामग्री निर्माण
एवं वितरण प्रभाग, इग्नू, नई दिल्ली-110068

श्री सी. एन. पाण्डेय
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन), सामग्री निर्माण
एवं वितरण प्रभाग, इग्नू, नई दिल्ली-110068

सितंबर, 2019

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2019

ISBN : 978-93-89200-21-8

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (चक्र मुद्रण) द्वारा अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी नई दिल्ली–110068 से अथवा इग्नू की आधिकारिक वेबसाइट www.ignou.ac.in से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से **कुलसचिव, सामग्री निर्माण एवं वितरण प्रभाग** द्वारा मुद्रित और प्रकाशित।
कंपोज़िंग एवं लेज़र टाइपसैट– ग्राफिक प्रिंटर्स, 204, पंकज टॉवर, मयूर विहार फेस 1, दिल्ली – 110091
मुद्रक : एस जी प्रिण्ट पैक्स प्रा० लि०, एफ-478, सेक्टर-63, नोएडा-201301, उ०प्र०

खंड परिचय : (खंड 4 – आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य)

आपके समक्ष अनिवार्य पाठ्यक्रम – **'हिंदी साहित्य का इतिहास'** का चतुर्थ खंड– **'आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य'** प्रस्तुत है। इस खंड में पाठ्यक्रम की इकाई–12 से लेकर इकाई–17 तक कुल छः इकाइयाँ इस प्रकार से है :

इकाई–12 : हिंदी कहानी का विकास – I

इकाई–13 : हिंदी कहानी का विकास– II

इकाई–14 : हिंदी उपन्यास का विकास– I

इकाई–15 : हिंदी उपन्यास का विकास– II

इकाई–16 : हिंदी नाटक का विकास

इकाई–17 : हिंदी निबंध का विकास

आधुनिकता के आगमन के साथ ही गद्य की विभिन्न विधाओं का विकास हुआ। कहानी, उपन्यास, नाटक तथा निबंध उनमें प्रमुख हैं। प्रस्तुत खंड में हिंदी में इन विधाओं के विकास के बारे में जानकारी दी गई है।

खंड की प्रथम दो इकाइयाँ (इकाई –12 तथा इकाई–13) हिंदी में कहानी विधा के विकास पर केंद्रित हैं। आधुनिक हिंदी कहानी का स्वरूप 1900 ई. के आसपास से उभरना शुरू हुआ तथा इसके पश्चात इस विधा के विकास में कई प्रस्थान बिंदु आए। खंड की प्रथम इकाई (इकाई–12) में हिंदी में कहानी विधा के प्रारंभ से प्रेमचंदोत्तर कहानी तक के विकास की जानकारी दी गई है। द्वितीय इकाई–13 में 'नई कहानी' से लेकर समकालीन कहानी तक के विकास की जानकारी दी गई है।

तीसरी तथा चौथी इकाइयाँ (इकाई–14 तथा इकाई–15) हिंदी में उपन्यास विधा के विकास पर केंद्रित हैं। खंड की तृतीय इकाई (इकाई–14) में हिंदी में इस विधा के आरंभ से देश की स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व के दौर में हुए विकास की जानकारी दी गई है। चतुर्थ इकाई (इकाई–15) में स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास के विकास तथा इस विधा की प्रमुख प्रवृत्तियों की जानकारी दी गई है।

खंड की पाँचवीं (इकाई–16) तथा छठी (इकाई–17) इकाइयाँ क्रमशः नाटक तथा निबंध विधा पर केंद्रित हैं। पाँचवीं इकाई 'हिंदी नाटक का विकास' में भारतेंदु युग से लेकर प्रसादोत्तर युग तक के हिंदी नाटक के विकास तथा नाटक के अन्य रूपों–गीति नाट्य, एकांकी, रेडियो नाटक आदि के स्वरूप और विकास की जानकारी दी गई है। खंड की अंतिम इकाई (इकाई–17) – 'हिंदी निबंध का विकास' में हिंदी में इस विधा के विकास की जानकारी दी गई है।

आप इकाई को पढ़िए तथा उनके उत्तर तैयार कीजिए। आपकी सुविधा के लिए बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा उनके उत्तर तैयार करने संबंधी निर्देश दिए गए हैं। विभिन्न इकाइयों से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकों की जानकारी भी आपको दी गई है जिसकी सहायता से आप अपने अध्ययन को विस्तृत कर सकते हैं।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 12 हिंदी कहानी का विकास-I

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 विधा के रूप में कहानी का स्वरूप

12.3 प्रेमचंद युग से पूर्व की हिंदी कहानी

12.4 प्रेमचंद युग

12.5 प्रेमचंदोत्तर कहानी

12.6 सारांश

12.7 उपयोगी पुस्तकें

12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

यह इकाई इस खंड की प्रथम इकाई है। इस इकाई में प्रेमचंदोत्तर युग तक की हिंदी कहानी के विकास की जानकारी दी जा रही है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- विधा के रूप में आधुनिक कहानी की विशिष्टताओं की जानकारी दे पाएँगे;
- हिंदी की प्रारंभिक कहानियों के विकास के बारे में बता पाएँगे;
- प्रेमचंद की कहानियों तथा उनके समय में सक्रिय अन्य कहानीकारों के योगदान पर प्रकाश डाल पाएँगे तथा
- प्रेमचंदोत्तर युग में इस विधा में हुए विकास की जानकारी दे पाएँगे।

12.1 प्रस्तावना

आधुनिकता के आगमन के साथ ही गद्य की विभिन्न विधाओं का विकास हुआ। कहानी भी उनमें से एक है। आज जिस अर्थ में कहानी का प्रयोग होता है वह पश्चिम में विकसित 'शॉर्ट स्टोरी' विधा का हिंदी पर्याय है। लेकिन यह गौर करने की बात है कि हिंदी में कहानी का प्रारंभिक विकास 'शॉर्ट स्टोरी' के तर्ज पर नहीं हुआ, बल्कि इसने पारंपरिक भारतीय कथा परंपरा पर यथार्थ के दबाव से रूपाकार लेना शुरू किया। यही कारण है कि बीसवीं सदी के पहले दशक की हिंदी कहानियों पर प्राचीन भारतीय कथा परंपरा का स्पष्ट प्रभाव है। यहाँ तक कि यह प्रभाव बहुधा प्रेमचंद में भी दृष्टिगोचर होता है। कालांतर में प्रेमचंद ने आदर्श के अनुपात को कम करते हुए यथार्थ को अपनी कहानियों में अधिकाधिक स्थान दिया। प्रेमचंद से लेकर बीसवीं सदी के अंतिम दशक में शुरू हुए विमर्शों तक और फिर भूमंडलीकरण के बाद उत्पन्न नई परिस्थितियों तक हिंदी कहानी विकास के कई चरणों से गुजरी है। इस इकाई में हिंदी कहानी में प्रेमचंदोत्तर युग अर्थात 'नई कहानी' आंदोलन से पूर्व तक के कहानी के विकास के बारे में जानकारी दी जा रही है।

12.2 विधा के रूप में कहानी का स्वरूप

हिंदी कहानी का स्रोत ठेठ भारतीय है। इसका जन्म 'शॉर्ट स्टोरी' की तर्ज पर नहीं बल्कि भारतीय कथा, आख्यान और दास्तानों की परंपरा में हुआ। हिंदी की आरंभिक कहानियों को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। इसी भारतीय कथा से हिंदी कहानी का कोंपल फूटा। भारत में कथा और किस्सों की समृद्ध परंपरा रही है। यही परंपरागत शिक्षा के प्रमुख माध्यम थे। पंचतंत्र की कहानियाँ इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। वेद, पुराण, उपनिषद, महाभारत, रामायण, जातक, पंचतंत्र आदि जैसी कथाओं में अनगिनत किस्से भरे पड़े हैं। बाद में इसी कथा परंपरा से 'कादम्बरी', 'दशकुमार चरित', 'सिंहासन बत्तीसी', 'बेताल पचीसी' आदि कहानियाँ फूटीं। कथाओं के इसी सागर से 'कहानी' का जन्म हुआ।

किस्सा और कहानी का फर्क स्पष्ट किए बिना आगे बढ़ना भ्रामक होगा और इससे उलझन ही बढ़ेगी। यह निर्विवाद है कि कहानी का जन्म मनुष्य के जन्म के साथ हुआ है। इसीलिए प्रत्येक सभ्यता के आरंभिक चरण से ही कथा की लिखित-अलिखित परंपरा मिलती है। कहानी का अचानक आविष्कार हुआ हो, ऐसी बात नहीं है। यह धीरे-धीरे विकसित और समृद्ध होती चली गई। कहानी मनुष्य की कल्पना की उपज है। सभ्यता के प्रथम चरण में शिकार और पशुपालन रोजगार तथा जीवन-यापन के प्रमुख आधार थे। पुरुष शिकार करने और पशुओं को चराने जंगल में जाते थे। शिकार करते समय या पशुओं को चराते समय पुरुषों को नए-नए अनुभव होते थे। बड़े-बूढ़े, स्त्रियाँ और बच्चे घर में रहते थे। अनुभव सुनाने के क्रम में स्वभावतः मनुष्य की सृजनशीलता और कल्पनाशीलता भी सक्रिय हो जाती थी। अनुभव, कल्पना और सृजनशीलता के इसी मेल से किस्सा-कहानी पनपने लगी। पशु-पक्षी, परी, भूत-प्रेत से लेकर जीवन की सच्चाई का वर्णन करने वाली कहानियों के जन्म की यही प्रक्रिया है।

परंतु आज हम जिसे कहानी कहते हैं, वे प्राचीन और मध्यकालीन किस्सों से भिन्न है। कहानी आधुनिक विधा है। यह प्राचीन और मध्यकालीन रोमांटिक बोध से सर्वथा मुक्त है। आधुनिकता ही इसकी कसौटी है। हालाँकि किस्सा और कहानी को पर्याय के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है परंतु इनमें मौलिक अंतर है। यह अंतर प्रस्तुति, कथ्य और कुल मिलाकर बनावट के स्तर पर है। दोनों दो 'रूप' हैं। किस्सा एक साधारण वृत्तांत है। इसमें एक के बाद दूसरी घटनाएँ काल क्रमानुसार घटती हैं। 'कौतूहल' इस प्रकार के किस्सों का मूल मंत्र होता है। कथावाचक में यह गुण होना चाहिए कि वह प्रत्येक घटना में इतना कौतूहल भरता चले कि 'फिर क्या हुआ' की जिज्ञासा ही न समाप्त हो। 'सहस्त्र रजनी चरित्र' की रचना इसी 'कौतूहल' का सुंदर नमूना है। एक शाहजादा था। उसका नाम था शहरयार। वह रोज एक स्त्री से शादी करता और सुबह होते ही उसका कत्ल कर देता। शाहजादियों की निर्मम हत्याएँ होते देखकर बादशाह के मंत्री की पुत्री को बेहद कष्ट हुआ। उसने शहरयार से शादी करने का फैसला किया। विवाह की पहली रात शाहजादी ने शाहजादे को एक कहानी सुनानी शुरु की। शाहजादा रात भर कहानी सुनता रहा। ज्यों ही सुबह हुई शाहजादी ने कहानी बंद कर दी। शाहजादे ने पूछा 'फिर क्या हुआ?' शाहजादी ने कहा 'जान बख्शें तो फिर रात में सुनाऊँगी।' शाहजादा मान गया। दूसरी रात फिर वही सिलसिला चला और यह हजार रातों तक चलता रहा। इस प्रकार शाहजादी की जान बचती रही। लेकिन इसमें गौर करने की बात है कि कहानी के कौतूहल ने ही शाहजादा को बाँध रखा था। किस्से का यह प्रमुख गुण है कि वह श्रोताओं को कितना बाँध कर रखता है।

किस्सा का गठन या रूप सुनने-सुनाने के अनुरूप होता है। यह अपनी प्रकृति से मौखिक होता है, हालाँकि मुद्रण सुविधा उपलब्ध होने से इस प्रकार की कथाएँ भी खूब छपने लगी हैं।

अब तो टेलीविजन में भी इन किस्सों को फिल्माया जाने लगा है। महाभारत, रामायण के अलावा दुर्गा, शिव, हनुमान की कथाओं या फिर 'बेताल पचीसी', 'सिंहासन बत्तीसी', 'कथा सरित्सागर' आदि की कथाओं को भी खूब फिल्माया जाने लगा है। आपने गौर किया होगा कि इन कथाओं में अलौकिकता का वर्चस्व होता है। मनोरंजक होने के साथ-साथ ये उपदेशात्मक भी होती हैं। इसमें अलौकिक पौराणिक कथाओं, नीति कथा, प्रतीक कथा, आचार कथा, शिकार कथा, साहित्यिक कथा, आश्चर्यजनक कथा, हास्य कथा, मिथक, दंत कथा, उपाख्यान, यात्रा वृत्तांत, ऐतिहासिक कथा और 'सत्य कथा' शामिल होती है। ये सारी कथाएँ वर्णनात्मक होती हैं। इनमें घटनाओं की भरमार होती है। ये घटनाएँ समयानुक्रम से घटती हैं। जैसे आज, कल, परसों या जन्म, शैशव, किशोरावस्था, युवावस्था, मृत्यु आदि। इस प्रकार 'समयानुक्रम' और 'घटनात्मकता' किस्सा की प्रमुख पहचान और विशेषता है। इसके अतिरिक्त इन कथाओं में समय और स्थान का निर्देश सामान्य और अस्पष्ट होता है। जैसे 'मुल्क हिंदुस्तान में एक बड़ा नामी शहर था' या 'एक पेड़ पर दो पक्षी निवास करते थे।' इनमें स्थानों के नाम इस प्रकार के होते थे - चंद्रपुर, विचित्रपुर, मानपुर, रत्नद्वीप, श्रवण द्वीप आदि। उनका अस्तित्व इन कथाओं में ही मिलता है, पृथ्वी पर नहीं। यदि किसी किस्से में किसी शहर का उल्लेख होता था तो भी उसका वर्णन बिल्कुल काल्पनिक, परंपरागत और काव्य रूढ़ि सम्मत होता था।

जिस विधा को आज हम कहानी के नाम से जानते हैं वह आधुनिक साहित्यिक विधा है। कथा के अनिवार्य तत्वों से जुड़े होने के बावजूद दोनों विधाओं में मौलिक फर्क आ गया है। 'यथार्थ' और 'विश्वसनीयता' आज की कहानी की प्रमुख विशेषता है पर 'कहानीपन' और 'कौतूहल' इसमें भी मौजूद होता है। जिस आधुनिक विधा के लिए हम 'कहानी' या 'छोटी कहानी' संज्ञा का प्रयोग करते हैं, वह अंग्रेजी की 'शॉर्ट-स्टोरी' का पर्याय है। यूरोप में 'शॉर्ट-स्टोरी' का जिस अर्थ में प्रयोग प्रचलित है - उसका विकास और प्रतिष्ठान 19वीं शताब्दी में हुआ। 1842 ई. में एडगर एलेन पो ने पहली बार 'शॉर्ट स्टोरी' को परिभाषित करने का प्रयास किया।

आधुनिक कहानी आधुनिकता बोध से युक्त है। यह आधुनिकता प्राचीन और मध्यकालीन बोधों की विरोधी है। आधुनिक युग में विज्ञान ने यथार्थ की नई तस्वीर दुनिया के सामने रखी। नए-नए विचारों ने मनुष्य के मानस को नए रूप में ढाला। 'यथार्थवाद' कथा साहित्य की व्याख्या और मूल्यांकन की कसौटी बन गया। आधुनिक यथार्थवाद के अनुसार सत्य का अन्वेषण इंद्रियों द्वारा ही किया जा सकता है अर्थात जो हम देखते, सुनते या महसूस करते हैं वही सत्य है। इंद्रियातीत अनुभव यथार्थ की सीमा से परे है अर्थात वह कहानी का विषय नहीं बन सकता। इसलिए पहले की तरह अलौकिकता कहानी का विषय नहीं रह गई। आलोचनात्मकता, परंपरा का विरोध और अन्वेषणात्मकता आधुनिक कहानियों की विशेषता है। यथार्थ के प्रति इसी आग्रह के कारण आधुनिक कहानीकारों ने अपने कथानक इतिहास, पुराण या प्रचीन साहित्य से न लेकर सीधे जीवन से लिए। यह मौलिकता आधुनिक कहानी की खास पहचान है।

आधुनिक कहानी में सामान्य चरित्रों के स्थान पर विशिष्ट पात्रों का समावेश किया गया जो जीते जागते इंसान जैसे लगें। इसी तरह कहानी में 'विशिष्ट' के चित्रण की प्रवृत्ति विकसित हुई। यह धारणा सामने आई कि अमूर्त और सामान्य पद प्रभावोत्पादक नहीं होते, क्योंकि विशिष्ट वस्तुओं से ही बिंब बन सकते हैं। इस विशिष्टीकरण के लिए आधुनिक कहानीकारों ने अपने पात्रों को विशिष्ट व्यक्तियों के रूप में प्रस्तुत करने के लिए उनका नामकरण बिल्कुल सामान्य जीवन में प्रयुक्त नामों के अनुसार किया। हमारे वास्तविक जीवन में व्यक्ति-विशेष की पहचान उसके नाम से घनिष्ठ रूप में जुड़ी हुई है। ऐसा नहीं है कि प्राचीन और

मध्ययुगीन कथाओं में पात्रों का नामकरण नहीं किया जाता था परंतु इन पात्रों के नाम अक्सर पौराणिक या प्रारूपिक हुआ करते थे। उनके नाम अविशिष्ट और अयथार्थ हुआ करते थे। जैसे 'वसुभूति', 'विचित्र बुद्धि' आदि। यहाँ तक कि राम, शत्रुघ्न, सीता, युधिष्ठिर, दुर्योधन नाम भी व्यक्तिवाचक कम गुण विशेष के प्रतीक ज्यादा लगते हैं। प्राचीन गद्यकथाओं में घटना-स्थल और घटना के समय का सामान्य और अस्पष्ट उल्लेख होता था और ज्यादातर इसमें साहित्यिक रूढ़ियों का पालन होता था। यथार्थ चित्रण के आग्रह के कारण आधुनिक कहानियों को दिक् और काल से जोड़ा गया। पात्रों के मर्मस्पर्शी क्षणों को एक विशेष स्थान और काल में घटित होते दिखाया जाने लगा। इससे कहानी अधिक विश्वसनीय लगने लगी।

इस प्रकार आधुनिकता की चुनौती ने कहानी की संरचना को बदल डाला। कहानी किस्से से मुक्त हुई और इसका विकास एक निजी कला के रूप में हुआ जिसका उद्देश्य बौद्धिक पाठक को संतुष्ट करना था। कहानी में 'मनुष्य' का प्रवेश हुआ और उसे पूरी तरह विश्वसनीय बनाकर प्रस्तुत किया गया। बेतुकेपन को निकाल बाहर किया गया। ऐसे पात्रों और चरित्रों का निर्माण किया गया जिससे पाठक तादात्म्य स्थापित कर सके। कहानियों में आभिजात्य नायक नहीं रहा। दीन-हीन, उपेक्षित, समाज से बहिष्कृत और सीमांतों पर भटकते लोग कहानी का विषय बन गए। मानव जीवन से जुड़े प्रसंगों, क्षणों, अनुभवों और पीड़ा को विश्वसनीयता से प्रस्तुत करना ही इसका उद्देश्य हो गया।

कहानी का आकार उसके रूप से तय होता है। उसकी विषय-वस्तु से ही कहानी की लंबाई या छोटाई तय होती है। जानबूझकर कहानी को खींचकर बढ़ाने या छोटा करने से कहानी को नुकसान पहुँचता है। 'शार्ट स्टोरी' से यह भ्रम होता है कि कहानी छोटी होनी चाहिए। लेकिन कहानी अनिवार्यतः छोटी या बड़ी नहीं होती। प्रत्येक आदमी के भीतर एक शाश्वत और खामोश जिंदगी होती है। इस जिंदगी को ही कहानीकार अपनी कहानी में बुनता है जिसमें थोड़ा यथार्थ होता है और थोड़ी कल्पना। कहानी में कम पात्रों के जरिए किसी प्रसंग, संकट, स्थिति, क्षण, द्वंद्व, संवेदना आदि को चित्रित किया जाता है। इसमें जीवन के व्यापक संदर्भ को सघनता से व्यक्त किया जाता है। इसमें फैलाव नहीं होता है। कहानी में यथार्थ उद्भासित होता है, विश्लेषित नहीं। इसमें कोई एक अनुभूति, संवेदना या मनोवेग अभिव्यक्त हो पाता है। इसलिए कहानी संकेंद्रित भी होती है। कहानी उस संगीत की तरह होती है जिसमें एक राग शुद्ध रूप में अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँचता है। कहानी में पृष्ठभूमि निर्माण, वर्णन और वार्तालाप का अवकाश कम होता है। अतः प्रभाव की निःसंगता, दृष्टिकोण की सूक्ष्मता और रचना प्रक्रिया की सरलता आधुनिक कहानी की खास विशेषता है।

अभी तक हमने प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक कहानी की विशेषताओं पर विचार किया। इन विशेषताओं के आधार पर अब हम यह पड़ताल करने का प्रयत्न करेंगे कि हिंदी साहित्य में आधुनिक विधा के रूप में 'कहानी' का उद्भव और विकास कब, कैसे और क्यों हुआ तथा अलग-अलग काल खंडों में कहानी किन-किन पड़ावों से गुजरी। इसी क्रम में हिंदी के प्रमुख कहानीकारों और उनकी कहानियों की भी चर्चा की जाएगी।

बोध प्रश्न - 1

(क) निम्नलिखित कथनों के आगे सही (✓) अथवा गलत (×) का निशान लगाइए।

(i) 'सहस्त्र रजनी चरित्र' में कहानी का सिलसिला सौ रातों तक चलता है।

(ii) 1842 में एडगर एलन पो ने पहली बार 'शॉर्ट स्टोरी' को परिभाषित करने का प्रयास किया।

(iii) आधुनिक कहानियों का नायक सिर्फ आभिजात्य वर्ग का होता है।

(iv) कहानी में यथार्थ उद्‌भासित होता है, विश्लेषित नहीं।

(v) मध्ययुगीन कथाओं में अक्सर पात्रों के नाम पौराणिक या प्रारूपिक हुआ करते थे।

(ख) आधुनिक अर्थ में कहानी विधा की विशिष्टताओं पर प्रकाश डालिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

12.3 प्रेमचंद युग से पूर्व की हिंदी कहानी

उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ से ही हिंदी में मौखिक कथाओं को लिखित रूप देने की परंपरा शुरू हुई। इस शताब्दी में लिखी गई किसी भी कहानी को 'आधुनिक कहानी' की संज्ञा नहीं दी जा सकती। इस समय लिखी सभी कहानियाँ या तो मध्यकालीन सूफी आख्यानों की नकल हैं या प्राचीन संस्कृत साहित्य का अनुवाद या रूपांतरण।

इस शताब्दी की रचनाओं में पहली कहानी है - **इंशाअल्ला खाँ** कृत 'रानी केतकी की कहानी'। इसकी रचना 1803 ई. में हुई थी। हिंदी के सूफी प्रेमाख्यानों और 'रानी केतकी की कहानी' में मात्र इतना अंतर है कि सूफी काव्य पद्य में लिखा गया है और इसकी रचना गद्य में हुई है। सूफी मसनवियों की शैली में इसमें भी आरंभ में ईश्वर वंदना की गई है और रचना का कारण बताया गया है। इसी प्रकार इसके प्रत्येक परिच्छेद का लंबा शीर्षक दिया गया है। सूफी प्रेम कहानियों के समान 'रानी केतकी की कहानी' अस्वाभाविक, अलौकिक, ईरानी कथारूढ़ियों और अतिशयोक्तिपूर्ण वृत्तांतों से भरपूर एक प्रेमकथा है। इसमें नायिका के नखशिख, सौंदर्य और वैवाहिक तैयारियों का अतिशयोक्तिपूर्ण और वस्तु परिगणनात्मक वर्णन मिलता है। भूत-प्रेत, मंत्र-तंत्र, जादू-टोना, देवी-देवता जैसे अलौकिक वर्णनों से यह कथा भरी पड़ी है। इसलिए मौलिक गद्य कथा होने के बावजूद 'रानी केतकी की कहानी' को आधुनिक कहानी नहीं कहा जा सकता।

'रानी केतकी की कहानी' मध्यकाल में प्रचलित प्रेमाख्यानकों का आधुनिक गद्य रूप है। इसके

अतिरिक्त इस शताब्दी के प्रथम सात दशकों में संस्कृत, फारसी और अंग्रेजी में उपलब्ध कथाओं के हिंदी रूपांतरण प्रस्तुत किए गए। इन कथाओं ने हिंदी में एक विशेष प्रकार के पाठक वर्ग का निर्माण किया जिनके बिना आधुनिक कहानी का अस्तित्व संभव ही नहीं था। **पं. गौरीदत्त** ने 'देवरानी जेठानी की कहानी' (1870) लिखी जो अपनी प्रकृति में उपन्यास और कहानी दोनों का मूल रूप है। आधुनिक कहानी यथार्थ के आधार पर खड़ी होती है और 'देवरानी जेठानी की कहानी' यथार्थ की जमीन से दृढ़तापूर्वक जुड़ी हुई है। पर 'देवरानी जेठानी की कहानी' से – यद्यपि इसके शीर्षक में कहानी शब्द जुड़ा हुआ है – हम हिंदी कहानी का आरंभ नहीं मान सकते। विधा के रूप में कहानी का जन्म उसके बीस वर्ष बाद 1901 ई. में प्रकाशित **माधवराव सप्रे** की कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' से हुआ। यह एक रोचक तथ्य है कि कहानी शब्द का प्रयोग 'रानी केतकी की कहानी' और 'देवरानी जेठानी की कहानी' दोनों में हुआ है पर 'रानी केतकी की कहानी' में कहानी शब्द का प्रयोग परंपरागत कथा के रूप में हुआ है जबकि 'देवरानी जेठानी की कहानी' में कहानी पद के उपयोग के पीछे 'नवल कथा' की अवधारणा है। यह कहानी किसी राजा-रानी की कहानी न होकर एक मध्यवर्ग के देवरानी और जेठानी की कहानी है। यह कहानी चूँकि शिल्प के रूप में कथा की प्रविधि का अनुकरण करती है, उसमें 'किस्सागो' शुरू से आखिर तक विद्यमान है अतः वह आधुनिक कहानी की शर्तों को पूरा नहीं करती परंतु कथ्य में निहित यथार्थवादी स्वर को देखते हुए उसे आधुनिक कहानी का पूर्व रूप मानने में किसी विवाद की गुंजाइश नहीं है।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में फोर्ट विलियम कॉलेज के तत्वावधान में 'बैताल पचीसी', 'प्रेमसागर', 'राजनीति' और 'चंद्रावती' या 'नासिकेतोपाख्यान' का अनुवाद किया गया। इसके अलावा उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम तीन दशकों में 'माधोनल', 'माधव विलास', 'नीति-कथा', 'गोरा बादल की बात', 'सुखसागर', 'उपदेश कथा' नामक कथा पुस्तकें अनूदित की गईं। 'गोरा बादल की बात' को छोड़कर सभी पुस्तकों की रचना पाठ्यपुस्तकों के रूप में की गई थी। इस समय 'किस्सा हातिमताई', 'किस्सा चहादरवेश', 'सूरजपुर की कहानी', 'कथासागर', 'वीरसिंह का वृत्तांत', 'वामामनरंजन', 'लड़कों की कहानी', 'रॉबिन्सन क्रूसो का इतिहास', 'यात्रा स्वप्नोदय', 'गुलबकावली' आदि रचनाएँ प्रकाशित हुईं। ये सभी रचनाएँ अनूदित हैं। 1886 ई. में राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' ने 'राजा भोज का सपना' लिखा। इन कहानियों में कहीं भी यथार्थ का आग्रह नहीं है। इनमें 'आधुनिक कहानी' का कोई गुण नहीं है।

इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी में प्राचीन और मध्यकालीन कथाओं की परंपरा चलती रही। मौलिक लेखन का अभाव रहा और ज्यादातर अनूदित रचनाएँ ही सामने आयीं।

इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में हिंदी में आधुनिक ढंग की कहानियाँ लिखी गईं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में निम्नलिखित कहानियों की सूची दी है :

(1) इंदुमती (किशोरीलाल गोस्वामी), 1900 ई.

(2) गुलबहार (किशोरीलाल गोस्वामी), 1902 ई.

(3) प्लेग की चुड़ैल (मास्टर भगवानदास), 1902 ई.

(4) ग्यारह वर्ष का समय (रामचंद्र शुक्ल), 1903 ई.

(5) दुलाईवाली (बंग महिला), 1907 ई.

बाद में माधवराव सप्रे की कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' का पता चला जो 1901 ई. में लिखी गई थी। यह कहानी आधुनिक ढंग की कहानी है। कुछ विद्वान 'इंदुमती' को हिंदी की पहली कहानी मानते हैं। परंतु यह मौलिक कहानी नहीं है। इसकी कथावस्तु शेक्सपियर के नाटक 'टेम्पेस्ट' पर आधारित है। अंतर केवल यह है कि इसमें वातावरण भारतीय है। यह कहानी भी परंपरागत किस्से की शैली से मुक्त नहीं हो सकी है। इससे भी पहले 1887 ई. में 'प्रणयिणी परिणय' नाम से किशोरीलाल गोस्वामी की एक कहानी प्रकाशित हो चुकी थी। परंतु इसे किसी भी कोण से आधुनिक कहानी नहीं कहा जा सकता। इसका कथ्य, शिल्प, भाषा सब कुछ पारंपरिक गद्य कथाओं का अनुकरण है।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में ही **वृंदावनलाल वर्मा** की कहानी 'राखीबंद भाई' (1909 ई.) प्रकाशित हुई। उनकी दूसरी कहानी 'तातार और वीर राजपूत' (1910) थी। बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में आधुनिक ढंग की कहानियों की धूम मच गई। पत्र-पत्रिकाओं में आधुनिक ढंग की कहानियाँ प्रकाशित होने लगीं। 'इंदु' पत्रिका में जयशंकर प्रसाद की पहली कहानी 'ग्राम' 1911 ई. में प्रकाशित हुई। 1911 ई. में ही 'भारत मित्र' में चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'सुखमय जीवन' छपी। **राजा राधिकारमण प्रसाद** सिंह प्रेमचंद युग के एक महत्वपूर्ण कहानीकार हैं। इनकी पहली कहानी 'कानों में कंगना' 1913 ई. में प्रकाशित हुई थी। यह कहानी सामंती पारिवारिक संरचना की विडंबनापूर्ण स्थिति को सामने लाती है। इस कहानी में पत्नी तथा वेश्या के प्रति प्रेम और इससे उत्पन्न टकराहट भरी स्थिति को चित्रित किया गया है। 'सुरबाला', 'मरीचिका', बिजली आदि इनकी अन्य कहानियाँ हैं। विवेच्य अवधि के अंतिम वर्ष (1938 ई.) में 'गांधी टोपी' नाम से इनका संग्रह छपा जिसमें 'गांधी टोपी', 'दरिद्रनारायण' आदि महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं। 1914 ई. में आचार्य चतुरसेन की कहानी 'गृहलक्ष्मी' छपी। प्रेमचंद की हिंदी में पहली कहानी 'सौत' 1915 ई. में 'सरस्वती' में छपी यद्यपि 1908 ई. में ही उर्दू में उनका पहला कहानी संग्रह 'सोजेवतन' प्रकाशित हो चुका था। बालकृष्ण शर्मा नवीन की कहानी 'संतू' 1918 ई. में 'सरस्वती' में छपी।

कहानियाँ तो इस दशक में खूब लिखी गई पर चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' ने सबको पीछे छोड़ दिया। यह कहानी 1915 ई. में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। गौरतलब है कि प्रेमचंद की पहली कहानी 'सौत' भी इसी वर्ष 'सरस्वती' में ही प्रकाशित हुई थी। परंतु अपने कथ्य, शिल्प, भाषा और पूरी बनावट में 'उसने कहा था' समय से काफी आगे बढ़ी कहानी है।

'उसने कहा था' युद्ध विरोधी कहानी है। इसका कलेवर प्रेमकथा का है जिसमें एक प्रेमी अपनी बचपन की प्रेमिका के पति और बेटे के लिए अपने आपको न्यौछावर कर देता है। परंतु यह कहानी का ऊपरी आवरण है। मूलचेतना युद्ध विरोधी है।

कथ्य ही नहीं शिल्प की दृष्टि से भी यह कहानी बेजोड़, अनुपम और अपूर्व है। पूर्वदीप्ति शैली (फ्लैशबैक) का इस्तेमाल पहली बार इसी कहानी में किया गया। पूरी कहानी संकेतों और प्रतीकों के सहारे ही आगे बढ़ती है। कथा में कालक्रम की रूढ़ि को तोड़ने का पहला प्रयास इसी कहानी में किया गया है।

बोध प्रश्न-2

(क) नीचे दिए गए कहानी तथा कहानीकारों के नामों का सही युग्म तैयार कीजिए।

	कहानी			**कहानीकार**
(i)	राजा भोज का सपना	-	(क)	रामचंद्र शुक्ल

(ii) एक टोकरी भर मिट्टी	-	(ख)	बंग महिला
(iii) ग्यारह वर्ष का समय	-	(ग)	किशोरीलाल गोस्वामी
(iv) इंदुमती	-	(घ)	राजा शिवप्रसाद सिंह
(v) दुलाईवाली	-	(ङ)	माधवराव सप्रे

(ख) 'रानी केतकी की कहानी' को आधुनिक अर्थ में कहानी नहीं कहा जा सकता। इस कथन पर पाँच पंक्तियों में अपना मत व्यक्त कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

(ग) प्रेमचंद युग से पूर्व की हिंदी कहानी के विकास पर प्रकाश डालिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

12.4 प्रेमचंद युग

हिंदी कहानी में प्रेमचंद का आगमन 1915 ई. में हुआ। हिंदी कहानी की यथार्थवादी और आलोचनात्मक परंपरा को प्रेमचंद ने न केवल आगे बढ़ाया बल्कि उसे नई दिशाएँ भी दिखाई। लोककथाओं का रस और शैली ग्रहण कर प्रेमचंद ने समाज के दलित और शोषित जनों की कथा कही है जिसमें कौतूहल भी है और रोमांच भी, सरलता भी है और व्यंग्य भी, यथार्थ भी है और आदर्श भी। प्रेमचंद की आरंभिक कहानियाँ किस्से कहानियों की शैली में लिखी गई

हैं। धीरे-धीरे प्रेमचंद किस्सों की शैली से मुक्त होकर आधुनिक शैली में कहानियाँ लिखने की ओर प्रवृत्त होते रहे। 'पूस की रात', 'ठाकुर का कुआँ', 'कफन' आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं। इन कहानियों में वर्णनात्मकता, घटनात्मकता, कालक्रम आदि की सीमाओं को प्रेमचंद ने तोड़ दिया है।

प्रेमचंद ने तीन सौ से ऊपर कहानियाँ लिखी हैं। 1908 ई. से 1915 ई. के बीच प्रेमचंद की चालीस कहानियाँ उर्दू में प्रकाशित हुई। 1908 ई. में 'सोजेवतन', 1914 ई. में 'प्रेमपचीसी' भाग-1 और 1918 ई. में भाग-2 कहानी संग्रहों का प्रकाशन हुआ। 'सोजेवतन' में देशप्रेम से युक्त कहानियाँ संकलित हैं। इसके अलावा अन्य संग्रहों में मध्यमवर्गीय संयुक्त परिवार की समस्याओं, मानवीय मूल्यों, धार्मिक पाखंडों और सामाजिक रुढ़ियों का वर्णन हुआ है। इस समय प्रेमचंद ने 'सिर्फ एक आवाज' नामक कहानी लिखी जो अछूतोद्धार से संबंधित है। इस कहानी में प्रेमचंद की दलित संवेदना प्रकट हुई है।

1915 ई. में प्रेमचंद की पहली हिंदी कहानी 'सौत' प्रकाशित हुई। प्रेमचंद की कहानी कला में विकास की दृष्टि से 1916-29 ई. का काल विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस काल में लिखी कहानियाँ विषय-वैविध्य, सामाजिक चेतना, मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि और कहानी कला के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। 1916-20 ई. के बीच प्रेमचंद ने अधिकतर ग्रामीण जीवन के पारिवारिक संबंधों, मूल्य-बोध और आदर्श से युक्त कहानियाँ लिखीं। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में स्त्रियों का बहुआयामी चित्रण किया है। उन्होंने अपनी कहानियों में नारी शोषण का विरोध किया और नारी को सबलीकृत किया।

प्रेमचंद की कहानियों में तत्कालीन यथार्थ के विविध रूपों का चित्रण हुआ है। उन्होंने साम्प्रदायिक भेदभाव, दलित के शोषण तथा स्वाधीनता आंदोलन से जुड़ी कहानियाँ भी लिखीं।

प्रेमचंद की कहानियों में आदर्श और यथार्थ का समन्वय मिलता है। लेकिन धीरे-धीरे प्रेमचंद अपने 'आदर्शों' से मुक्त होते गए और उनकी कहानियाँ 'यथार्थ' चित्रण की सशक्त हथियार बन गईं। 'कफन', 'पूस की रात', 'ठाकुर का कुँआ', 'सद्गति' आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं।

जयशंकर प्रसाद की पहली कहानी 'ग्राम' 1911 ई. में प्रकाशित हुई। इसी के बाद 'छाया' नाम से उनका कहानी-संग्रह प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में संकलित कहानियाँ दूसरे दशक के आरंभ में लिखी गई थीं। प्रसाद मूलतः कवि हैं। इसलिए उनकी कहानियों पर भी उनका कवि हावी है। उनकी कहानियाँ भावुकता से परिपूर्ण हैं। बाद की कहानियों, जैसे 'आकाशदीप', 'पुरस्कार', 'गुंडा' और 'मधुआ' आदि कहानियाँ भी भावुकता और रूमानियत से अप्रभावित नहीं है। प्रेम उनकी कहानियों का मुख्य विषय है। संबंधों की जटिलता, द्वंद्व और अंतर्विरोध को प्रसाद अपने पात्रों के जरिए सूक्ष्मता से वर्णित करते हैं। 'आकाशदीप' की नायिका चम्पा बुद्धगुप्त से प्रेम भी करती है, घृणा भी। वह बुद्धगुप्त से प्रेम करती है। तभी उसे पता चलता है कि उसका प्रेमी ही उसके पिता का हत्यारा है। यह जानकर चम्पा बुद्धगुप्त से घृणा करने लगती है। वह बुद्धगुप्त से बदला भी लेना चाहती है और उसके प्रति अपने को पूर्णतः समर्पित भी पाती है। लेकिन कुल मिलाकर कहानी में एक भावुकतापूर्ण वातावरण ही बन पाता है जो नाटक के लिए ज्यादा उचित प्रतीत होता है। उनकी कहानी नाटक और कविता के बीच 'सैंडविच' हो गई है। 'पुरस्कार', 'गुंडा', 'मधुआ' आदि सभी प्रेमकथाएँ हैं जिसमें कभी प्रेमी तो कभी प्रेमिका भावुकतापूर्ण निर्णय ले, प्रेम के लिए अपने को बलिदान करते हैं। प्रसाद की कहानियों में वर्णित घटनाएँ अवास्तविक लगते हुए भी मन को छूती हैं।

विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' और सुदर्शन प्रेमचंदकालीन प्रमुख कहानीकार हैं। ये दोनों ही प्रेमचंद की परंपरा के कहानीकार माने जाते हैं। कौशिक का 'रक्षाबंधन' 1912 में प्रकाशित

हुआ। उन्होंने अपनी कहानियों में बाल विवाह, पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा जैसी अनेक पारिवारिक समस्याओं को चित्रित किया है। उन्होंने दो सौ से अधिक कहानियाँ लिखीं हैं। 'ताई' और 'पगली' कौशिक की प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

सुदर्शन ने भी अपनी कहानियों में पारिवारिक जीवन को चित्रित किया है। उनकी कहानियों पर परंपरागत भारतीय कथा और परंपरा का प्रभाव दीखता है। हृदय परिवर्तन, सत्य की विजय और परंपरागत सकारात्मक मूल्यों की स्थापना उनकी कहानियों का मुख्य स्वर है। 'हार की जीत' और 'कवि की स्त्री' सुदर्शन की लोकप्रिय कहानियाँ हैं।

चतुरसेन शास्त्री, रायकृष्ण दास और विनोदशंकर व्यास प्रसाद की परंपरा के कहानीकार हैं। इनकी कहानियाँ ऐतिहासिकता, प्रेम और करुणा को आधार बनाकर लिखी गई हैं।

1923 ई. में **पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'** ने अपनी पहली कहानी 'चिनगारियाँ' लिखी। उग्र ने अपनी कहानियों में समाज का यथार्थ अनावृत रूप में प्रस्तुत किया है। उनकी कहानियों में सामाजिक शोषण और कुप्रथाओं के खिलाफ आक्रोश है। 'चिनगारियाँ' कहानी संग्रह में राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत कहानियाँ हैं। इसलिए इस कहानी संग्रह को सरकार ने जब्त कर लिया था। उनकी कहानियाँ व्यंग्य के पैनेपन के लिए जानी जाती हैं। कलात्मक दृष्टि से उग्र की कहानियाँ बहुत श्रेष्ठ नहीं कही जा सकती परंतु विषय और उसके विश्लेषण की दृष्टि से वह अपने युग के कथाकारों से आगे थे।

जैनेन्द्र ने हिंदी कहानी को नई संभावनाओं से जोड़ा और उसे नई दिशा दिखाई। हिंदी कहानी के विकास में उनका योगदान यह है कि उन्होंने कहानी की वृत्तात्मकता और वर्णनात्मकता का त्याग किया और चरित्र के माध्यम से ही कहानी कहने का प्रयास किया। ऐसा नहीं था कि इससे पहले कहानी में पात्र होते ही नहीं थे। पात्रों के बिना तो कहानी बन ही नहीं सकती। परंतु वहाँ पात्र प्रमुख नहीं हुआ करते थे, घटनाएँ प्रमुख होती थीं। पात्र घटनाओं के बहाव में बहते थे। जैनेन्द्र ने इस क्रम को उलट दिया। अब पात्र प्रमुख हो गए। जैनेन्द्र ने पात्रों के मस्तिष्क में प्रवेश कर मानव मन के सत्य को ढूँढने का प्रयास किया। हालाँकि अपने अंतिम दौर की कहानियों में प्रेमचंद यह काम पहले ही कर चुके थे, परंतु प्रेमचंद अपने पात्रों को जहाँ सामाजिक संदर्भ में रखकर चित्रांकित करते थे वहीं जैनेन्द्र व्यक्तिगत और मनोवैज्ञानिक धरातल पर अपने पात्रों का निर्माण और पड़ताल करते थे। उनकी पहली कहानी 'हत्या' (1927 ई.) ऐसी ही कहानी है। 'खेल', 'नीलम देश की राजकन्या', 'पाजेब', 'एक दिन' आदि उनकी प्रमुख कहानियाँ हैं। इनमें व्यक्ति मन की दुविधाओं, द्वंद्वों, अंतर्विरोधों, शंकाओं, आदि का अंकन किया गया है। उनकी कहानियाँ नारी मुक्ति का शंखनाद है। जैनेन्द्र ने नारी की परंपरागत मूर्ति का भंजन किया और उसे घर, परिवार, पति के बंधनों से मुक्त करने की प्रेरणा दी। माँ, पत्नी और पुत्री से अलग भी नारी का कोई अस्तित्व हो सकता है, इसे जैनेन्द्र ने ही पहली बार अपनी कहानी में दर्शाने का साहस किया। इससे पहले हिंदी में नारी के 'मर्यादित' रूप को ही प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया गया था। जैनेन्द्र ने नारी को 'मर्यादा' के इस शोषण-चक्र से मुक्त करने का प्रयास किया। अनुभूति, संवेदना और सूक्ष्मता के मेल से जैनेन्द्र ने हिंदी कहानी को कलात्मक स्तर पर ऊँचा उठाया। इस प्रकार विचार और कला दोनो ही स्तरों पर हिंदी कहानी आगे बढ़ी।

बोध प्रश्न-3

(क) निम्नलिखित कहानियों के सामने उनके कहानीकारों का नाम लिखिए।

कहानी		**कहानीकार**
(i) खेल	-	.....
(ii) हार की जीत	-	.....
(iii) गुंडा	-	.....
(iv) रक्षाबंधन	-	.....
(v) चिनगारियाँ	-	.....

(ख) हिंदी कहानी में प्रेमचंद के योगदान पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
(उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

(ग) प्रेमचंद युग में प्रेमचंद के अतिरिक्त सक्रिय अन्य प्रमुख कहानीकारों के रचनात्मक अवदान पर प्रकाश डालिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

12.5 प्रेमचंदोत्तर कहानी

अज्ञेय, यशपाल आदि कहानीकार प्रेमचंद युग से ही हिंदी कहानी में सक्रिय थे, लेकिन इनकी कहानियों का बड़ा हिस्सा प्रेमचंद युग के बाद लिखा गया। अज्ञेय भी जैनेन्द्र के समान मानव मन के चितेरे हैं। परंतु अज्ञेय के चरित्र जैनेन्द्र के चरित्र की अपेक्षा कम अंतर्मुखी हैं और वे अपने परिवेश से संघर्ष भी करते हैं। **अज्ञेय** ने रुढ़िग्रस्त भारतीय समाज, शोषण और बाद में विभाजन को लेकर मार्मिक कहानियाँ लिखी हैं। उनका प्रथम कहानी संग्रह 'विपथगा' 1931 ई. में प्रकाशित हुआ था। 'विपथगा' युद्ध विरोधी तथा नारी मुक्ति की कहानी है। अपनी कहानियों में अज्ञेय ने परंपरागत सामाजिक मूल्यों और भ्रष्ट शासन व्यवस्था को नकारा है। उनकी कहानियों में प्रेम, कर्तव्य, आदर्श और यथार्थ के संघर्ष का मार्मिक चित्रण किया गया है। इनमें अज्ञेय ने व्यक्ति मन की कुंठाओं, प्रेरणाओं और अंतर्द्वंद्वों का विश्लेषण किया है। अज्ञेय की कहानियाँ व्यक्ति केंद्रित होते हुए भी सामाजिक संघर्ष और विद्रोह से युक्त हैं। देश विभाजन को आधार बनाकर लिखी गई कहानियों के अलावा अज्ञेय की कहानियाँ आत्मपरक हैं। अज्ञेय ने अपने क्रांतिकारी और जेल जीवन को भी कहानी का विषय बनाया है। उनकी कई कहानियाँ उनके घुमंतू जीवन और सेना के अनुभवों को आधार बनाकर लिखी गई हैं। क्रांति के समर्थन में लिखी गई अज्ञेय की कहानियों में 'हारिति', 'अकलंक', 'द्रोही' और 'विपथगा' प्रमुख हैं। 'अमरवल्लरी', 'हरसिंगार' आदि कहानियों में अज्ञेय का रोमानी और भावुक मन हिलोरे मारता दिखाई पड़ता है। इन कहानियों में प्रेम का अंकन हुआ है और स्त्री का आदर्श रूप सामने आया है। इनमें प्रेम के अछूते आयामों को पकड़ने का प्रयास किया गया है। 'जिजीविषा', 'चिड़िया घर', 'पहाड़ी जीवन' आदि कहानियों में सहज मानवीय स्थितियों का अंकन किया गया है। अज्ञेय की आरंभिक कहानियों में रोमानीपन है परंतु 'गैंग्रीन' जैसी कहानियाँ यथार्थ पर आधारित हैं। 'विपथगा', 'कोठरी की बात', 'शरणार्थी', 'जयदोल', 'अमर वल्लरी' और 'ये तेरे प्रतिरूप' उनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं।

इलाचंद्र जोशी की कहानियाँ विभिन्न मनोवैज्ञानिक स्थितियों को दर्शाती हैं परंतु उनकी कहानियों के पात्र और परिवेश कृत्रिम लगते हैं। उनके पात्र मनुष्य नहीं बल्कि रोबोट लगते हैं। 'खंडहर की आत्माएँ', 'डायरी के नीरस पृष्ठ', 'आहुति' और 'दीवाली' उनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं। जोशी जी की कहानियाँ फॉर्मूलाबद्ध हैं, इसलिए जीवंत नहीं हैं।

यशपाल सामाजिक यथार्थवादी रचनाकार हैं। प्रेमचंद की प्रगतिशील चेतना यशपाल में प्रखर रूप से प्रकट हुई। मार्क्सवादी दर्शन को आधार बनाकर यशपाल ने समाज में फैली विषमता पर आघात किया। वर्ग संघर्ष, मनोविश्लेषण और तीखा व्यंग्य उनकी कहानियों की विशेषता है। वे पाठक के रूढ़ संस्कारों पर आघात करते हैं। यशपाल ने कहानी को जीवन की समस्याओं के अध्ययन का औजार माना है। उनकी कहानियों में जीवन के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि प्रकट हुई है। यथार्थ के प्रति मर्मभेदी दृष्टि रखने वाले यशपाल कहानी को समाज कल्याण के हथियार के रूप में इस्तेमाल करना चाहते हैं। वे इससे समाज की रूढ़ियों और मनुष्य में हो रहे नैतिक अवमूल्यन पर प्रहार करते हैं। यशपाल ने मनोवैज्ञानिक और यौन समस्याओं पर भी कहानियाँ लिखी हैं। 'चित्र का शीर्षक', 'आतिथ्य', 'गवाही', 'प्रतिष्ठा का बोझ', 'परदा', 'मक्रील', 'मक्खी या मकड़ी', 'आदमी का बच्चा', 'कोकला डकैत' आदि उनकी कुछ प्रमुख कहानियाँ हैं।

बोध प्रश्न-4

(क) हिंदी कहानी के विकास में अज्ञेय के योगदान पर प्रकाश डालिए।
(उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

(ख) 'प्रेमचंद की प्रगतिशील चेतना यशपाल में प्रखर रूप में प्रकट हुई'। इस कथन पर अपना विचार व्यक्त कीजिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

12.6 सारांश

- आधुनिक हिंदी कहानी का विकास पश्चिम की 'शॉर्ट स्टोरी' की तर्ज पर न होकर प्राचीन भारतीय कथा परंपरा की अगली कड़ी के रूप में हुआ।
- आधुनिक कहानी में कहानीपन और कौतूहल के साथ ही यथार्थ और विश्वसनीयता प्रमुख विशेषता है। इसमें अलौकिकता के लिए कोई स्थान नहीं है।
- 1901 ई. से लेकर 1915 ई. तक के समय को प्रेमचंद पूर्व युग के रूप में रेखांकित किया जाता है। 1901 ई. में माधवराव सप्रे द्वारा हिंदी की पहली कहानी लिखी गई। इस दौर के अन्य प्रमुख कहानीकार हैं - किशोरीलाल गोस्वामी, रामचंद्र शुक्ल, बंग महिला, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, चंद्रधर शर्मा गुलेरी आदि।

- 1915 ई. में 'सौत' कहानी के साथ प्रेमचंद का हिंदी कहानी में आगमन हुआ। प्रेमचंद ने हिंदी कहानी का अभूतपूर्व विस्तार किया। उनकी कहानी यात्रा प्रारंभिक आदर्शवाद के बाद उत्तरोत्तर यथार्थ की ओर अग्रसर होती चली गई।
- इसी युग में जयशंकर प्रसाद, विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', सुदर्शन, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, जैनेन्द्र जैसे कहानीकार हुए जिन्होंने हिंदी कहानी को नई ऊँचाई प्रदान की। प्रसाद ने प्रेम, भावुकता तथा अंतर्द्वंद्व के मिश्रण से कहानियाँ निर्मित की वहीं जैनेन्द्र ने पात्रों को केंद्र में रखते हुए उनके व्यक्तिगत और मनोवैज्ञानिक आयाम के संयोग से कहानियाँ रचीं। जैनेन्द्र ने पहली बार नारी के परंपरागत रूप से हटकर उनके स्वतंत्र अस्तित्व को उजागर करने वाली कहानियाँ लिखीं।
- अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी, यशपाल आदि प्रेमचंदोत्तर युग के प्रमुख कहानीकार हैं। यशपाल ने मार्क्सवादी चेतना के साथ प्रेमचंद की परंपरा को आगे बढ़ाया। अज्ञेय ने व्यक्ति के मन की कुंठाओं, प्रेरणाओं और अंतर्द्वंद्व को विश्लेषित किया।

12.7 उपयोगी पुस्तकें

- *हिंदी कहानी का विकास* – मधुरेश, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद
- *हिंदी कहानी का इतिहास* : 1900-1950 – गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

(क) (i) - ×

(ii) - ✓

(iii) - ×

(iv) - ✓

(v) - ✓

(ख) देखें - भाग 12.2

बोध प्रश्न-2

(क)	**कहानी**		**कहानीकार**
	(i)	-	(घ)
	(ii)	-	(ङ)
	(iii)	-	(क)
	(iv)	-	(ग)
	(v)	-	(ख)

(ख) देखें - भाग 12.3

(ग) देखें - भाग 12.3

बोध प्रश्न-3

(क)

कहानी		**कहानीकार**
(i)	-	जैनेन्द्र
(ii)	-	सुदर्शन
(iii)	-	जयशंकर प्रसाद
(iv)	-	विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक'
(v)	-	पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'

(ख) देखें - भाग 12.4

(ग) देखें - भाग 12.4

बोध प्रश्न-4

(क) देखें - भाग 12.5

(ख) देखें - भाग 12.5

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 13 हिंदी कहानी का विकास-II

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 नई कहानी

13.3 साठोत्तरी कहानी

13.4 समकालीन कहानी

13.5 दलित संदर्भ

13.6 हिंदी कहानी में स्त्री-स्वर

13.7 सारांश

13.8 उपयोगी पुस्तकें

13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.0 उद्देश्य

इकाई-12 में आप देश की स्वतंत्रता से पूर्व तक हुए कहानी के विकास के बारे में जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। इस इकाई में आपको देश की स्वतंत्रता के पश्चात कहानी विधा में हुए विकास के बारे में जानकारी दी जा रही है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- हिंदी कहानी में हुए विभिन्न कहानी आंदोलनों के बारे में जानकारी दे पाएँगे;
- 'नई कहानी' की रचनात्मकता के बारे में बता पाएँगे;
- 'साठोत्तरी कहानी' के भाव-बोध पर प्रकाश डाल पाएँगे;
- हिंदी कहानी में स्त्री-स्वर की विशिष्टताओं के बारे में जानकारी दे पाएँगे;
- कहानी विधा में दलित चेतना के विकास की जानकारी दे पाएँगे तथा
- समकालीन कहानी के प्रमुख बिंदुओं को रेखांकित कर पाएँगे।

13.1 प्रस्तावना

स्वातंत्र्योत्तर भारत में हिंदी कहानी विधा का परिदृश्य हलचलों से भरा हुआ है। देश की स्वतंत्रता के कुछ वर्ष पश्चात ही 'नई कहानी' के रूप में इस विधा के अंदर आंदोलन-सा उठ खड़ा हुआ। यह आंदोलन बहुत उर्वर था और इसमें एक साथ कई प्रकार के – शहरी आभिजात्य, शहरी मध्यवर्ग, ग्रामीण, स्त्री आदि – स्वर थे। इस आंदोलन की रचनात्मक समृद्धि के पश्चात कई कहानी आंदोलन प्रायोजित किए गए, हालाँकि हर आंदोलन उसी तरह रचनात्मक सिद्ध नहीं हो पाया।

हिंदी कहानी विधा में जो कहानी आंदोलन हुए उनका क्रम इस प्रकार है – (i) नई कहानी

आंदोलन – इसकी रचनात्मक प्रवृत्ति 1950 ई. के आसपास उभरनी शुरू हुई तथा 1954–55 ई. के आसपास इसका स्वरूप स्थापित होने लगा। नई कहानी के प्रवक्ताओं ने 'अनुभूति की प्रमाणिकता' पर जोर दिया। (ii) साठोत्तरी कहानी – 'साठोत्तरी' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है। एक तो उस प्रवृत्ति-विशेष के लिए जो सन् 60 ई. के बाद ज्ञानरंजन, दूधनाथ सिंह, काशीनाथ सिंह, रवींद्र कालिया आदि कहानीकारों में उभरी और विकसित हुई। इनकी कहानियों का भावबोध संत्रास और संबंधहीनता से निर्मित हुआ। इनकी कहानियों के लिए 'अकहानी' का भी प्रयोग किया गया। दूसरा, 'साठोत्तरी' शब्द का प्रयोग उन सभी कहानी आंदोलनों या कहानियों के लिए किया जाता है जिसने सन् साठ के बाद रूपाकार लिया। इस पाठ में 'साठोत्तरी' शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया गया है।

साठोत्तरी कहानियों में 'अकहानी' ने ही रचनात्मकता के स्तर पर कुछ नया जोड़ा। इसके अतिरिक्त जो अन्य कहानी आंदोलन सामने आए, उसके प्रस्तावकों ने कुछ दिशा-निर्देश तथा मानदंड जरूर तय किए, लेकिन इनके अंदर से निकली कहानियों का अपना कोई विशिष्ट स्वरूप नहीं उभर पाया। ये कहानी आंदोलन थे – महीप सिंह के नेतृत्व में चलाया गया 'सचेतन कहानी' (1964 ई.), अमृत राय के प्रस्ताव पर चला 'सहज कहानी' (1968 ई.), कमलेश्वर के नेतृत्व में चलाया गया 'समांतर कहानी' (1972 ई.) तथा राकेश वत्स द्वारा चलाया गया 'सक्रिय कहानी' (1979 ई.)।

कहानी विधा जब कहानी-आंदोलनों से मुक्त हुई तो जनपक्षधर रूझान के साथ 'समकालीन कहानी' विकसित हुई जिसमें स्वतंत्र रूप से कहानीकार आम जन की आशा-आकांक्षाओं और उनकी वंचनाओं को स्वर दे रहे हैं। इस दौर में एक और बात हुई, वह था विमर्शों की शुरूआत। विमर्शों में दलित विमर्श तथा स्त्री विमर्श ने हिंदी कहानी को खासा प्रभावित किया। आगे इन सब के बारे में कतिपय विस्तार से जानकारी दी जा रही है।

13.2 नई कहानी

कहानीकार अपने युग से प्रभावित होता है। बीसवीं शताब्दी के मध्य से हिंदी का कहानीकार दोहरी यातना से गुजर रहा था। एक ओर युद्ध की विभीषिका का आतंक और दूसरी ओर युगों से पराधीन देश को मिली आजादी और विभाजन। विभाजन के बाद भारत खून से लथपथ हो गया। पिछला सब कुछ भस्म हो गया। हत्याओं और नृशंसताओं का काफिला सबको घायल कर गया।

कालांतर में धीरे-धीरे देश 'सहज' होने लगा। आजादी के बाद नया माहौल बना। देश में उद्योग धंधों का विकास हुआ। रोजगार के नए-नए अवसर सामने आए। नौकरी करने के लिए लोग गाँवों से शहरों की ओर तेजी से निकलने लगे। शहर पहुँचकर उन्हें लगा कि यहाँ तो सब संवेदनहीन यंत्र हैं। 'अकेलापन' उनके भीतर नासूर बनने लगा। जिंदगी चीख लगने लगी। वे अंतर्मुखी होने लगे। धीरे-धीरे वे भी शहर की मशीन का एक पुर्जा बन गए। स्त्रियाँ भी नौकरी करने लगीं। घर की चारदीवारी को लाँघकर वे सामाजिक क्षेत्र में प्रवेश कर गईं। उन्होंने पुरुष के बराबर दर्जे की माँग की। अपने हक के लिए वे लड़ने लगीं। उनमें 'प्रेम' करने और अपने पैरों पर खड़े होने का साहस आया। अब वे परिवार पर बोझ नहीं रहीं बल्कि वे परिवार की 'पालनहार' बन गईं।

इस बदले हुए माहौल और वातावरण को नए कहानीकारों ने अपनी कहानी का विषय बनाया। असल में अब कहानीकार आपबीती ही सुनाने लगा। पहले का कहानीकार जगबीती सुनाता था अब कहानीकार आपबीती पर ज्यादा बल देने लगा।

दृष्टि बदली तो कहानी का रंग-ढंग भी बदला। कहानी से घटनाएँ गायब होने लगीं, आरंभ और अंत तक का कोई सिलसिला नहीं रहा, सरलता के स्थान पर जटिलता आई, स्थूल का स्थान सूक्ष्म ने ले लिया, यथार्थ बिना किसी लाग लपेट के सामने आया। इस दौर में लिखी कहानियों ने 'कहानी' का दायरा विस्तृत किया। अब कहानियाँ संश्लिष्ट हो गईं और स्केच, निबंध, संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत, स्मृति, डायरी, लोक कथाओं आदि के रूप में लिखी जाने लगीं। उपमाओं के स्थान पर प्रतीकों और बिबों का प्रयोग होने लगा। कहानीकार का भोगा हुआ सच उसकी कहानियों में पैबस्त हो गया। कहानी अतिआदर्शवाद तथा अतिभावुकता के कोहरे से निकलकर मनोविज्ञान, समाजविज्ञान, विज्ञान की ठोस आधारभूमि पर टिक गई। इसके अलावा इस युग की कहानियों में 'संकट' और 'अंतर्विरोध' को पकड़ने का प्रयत्न किया गया। इस संकट और 'अंतर्विरोध' को सम्पूर्ण तीव्रता में ग्रहण कर इस युग के कहानीकारों ने सफल और सार्थक कहानियाँ लिखीं।

बीसवीं शताब्दी के छठे दशक में कहानियाँ एकाएक महत्वपूर्ण हो उठीं और कहानियों की अनेक पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगीं। 1954 ई. में 'कहानी' पत्रिका का पुनर्प्रकाशन आरंभ हुआ। 'नई कहानी' के नाम से एक कहानी आंदोलन की शुरुआत हो गई। नए भावबोध की कहानियाँ होने के कारण इन्हें 'नई कहानी' का नाम दिया गया। यह एक साथ मूल्य-भंग और मूल्य-निर्माण की कहानियाँ हैं।

मार्कंडेय, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, अमरकांत, भीष्म साहनी, फणीश्वरनाथ रेणु, निर्मल वर्मा, शेखर जोशी, शैलेश मटियानी, उषा प्रियंवदा, राजकमल चौधरी, हरिशंकर परसाई, धर्मवीर भारती, शिवप्रसाद सिंह, रामकुमार, रमेश बक्षी, कृष्ण बलदेव वैद, कृष्णा सोबती आदि इस युग और प्रवृत्ति के प्रमुख कहानीकार हैं।

इन कहानीकारों को 'नए कहानीकार' कहा जाता है। इन्होंने अलग-अलग ढंग से आधुनिक जीवन के 'संकट' को चित्रित किया है और इन सबकी प्रतिक्रिया अलग-अलग है। 'नई कहानी' के पुरोधा होने के बावजूद इनकी मानसिकता, विचार और कहानी कहने का ढंग एक जैसा नहीं है। 'नई कहानी' का नयापन कोई नारा नहीं है बल्कि नया जीवन-बोध और दृष्टि है। यह अपने आसपास की मिट्टी से उपजा बोध है। यह लेखक का भोगा हुआ यथार्थ है। इसलिए 'नई कहानी' के लेखकों ने विषय के अनुसार अलग–अलग शिल्प अपनाया। प्रत्येक कहानीकार के व्यक्तित्व ने कहानी के रूप को प्रभावित किया।

डॉ. नामवर सिंह ने निर्मल वर्मा की कहानी 'परिंदे' को पहली 'नई कहानी' और निर्मल वर्मा को पहला नया कहानीकार कहा है। नामवर जी का यह निर्णय सर्वमान्य नहीं है। 'नई कहानी' किसी फॉर्मूले या एक लीक पर नहीं लिखी गई। यह तो लेखक के नए आत्मबोध का व्यापक प्रस्फुटन है अतः इसमें बेहद विविधता है। मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव आदि ने टूटते हुए परिवार, महानगरीय अकेलेपन और आधुनिक जीवन की विडंबनाओं और विसंगतियों को अपनी कहानी का विषय बनाया है। **राजेन्द्र यादव** की 'एक कमजोर लड़की की कहानी', 'टूटना', 'किनारे से किनारे तक'; कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया', 'खोई हुई दिशाएँ'; **मोहन राकेश** की 'एक और जिंदगी', 'सुहागिनें', 'आखिरी सामान' आदि कहानियों में प्रेम और दाम्पत्य जनित विभिन्न स्थितियों को चित्रित किया गया है। इन कहानियों में आधुनिक जीवन में नितांत निजी संबंधों में घर कर गई कुंठा, तनाव, अजनबीपन आदि की अभिव्यक्ति है। **अमरकांत** शोषित वर्ग के कथाकार हैं। उन्होंने निम्न-मध्यवर्गीय परिवार की वंचनाओं और विडंबनाओं को अपनी कहानियों में बहुत अच्छे ढंग से पिरोया है। इस लिहाज से 'दोपहर का भोजन', 'डिप्टी कलक्टरी', 'सुख-दुख का साथ' उल्लेखनीय कहानियाँ है। भीष्म साहनी इस दौर के एक प्रमुख कहानीकार हैं। उन्होंने मध्यवर्गीय जीवन में घर कर गई दोहरेपन तथा निम्नवर्गीय समाज की विडंबनापूर्ण नियति को अपनी कहानियों में प्रमुखता से

उकेरा है। उनकी 'चीफ की दावत' हिंदी की अविस्मरणीय कहानी है जिसमें उन्होंने परिवार के अंदर बुजुर्ग की उपेक्षा भरी स्थिति तथा मध्यवर्गीय कामकाजी वर्ग के चाटुकारिता की मानसिकता को बहुत ही सुंदर ढंग से चित्रित किया है। 'पहला पाठ' शीर्षक कहानी में उन्होंने आर्य समाजी मूल्य व्यवस्था के अंतर्विरोध को सामने लाया है। 'तमगे', 'समाधि भाई राम सिंह', 'अमृतसर आ गया है', 'साग-मीट', 'पटरियाँ' आदि उनकी महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं। फणीश्वरनाथ रेणु, मार्कंडेय, शिव प्रसाद सिंह और विवेकी राय ग्रामीण संवेदना के कथाकार हैं। **फणीश्वरनाथ रेणु** ने हिंदी कहानी में एक नई कोटि—आंचलिक कहानी को विकसित किया। इसका तात्पर्य यह है कि ये कहानियाँ जिस क्षेत्र-विशेष की है वहाँ की बोली-बानी, गीत-संगीत, मान्यताएँ, तीज-त्योहार और जीवन के ढब का कहानी में केंद्रीय स्थान होता है। वस्तु के स्तर पर रेणु ने प्रेम और विस्थापन को प्रमुखता से अपना विषय बनाया है। 'तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफाम', 'रसप्रिया', 'एक आदिम रात्रि की महक' उनकी प्रसिद्ध प्रेम कहानियाँ हैं। 'विघटन के क्षण', 'भित्तिचित्र की मयूरी', 'उच्चाटन' आदि कहानियों में उन्होंने गाँव से होने वाले विस्थापन को अपना विषय बनाया है। **मार्कंडेय** की कहानियों में योजनाओं के नाम पर की जा रही ठगी को प्रमुखता से रेखांकित किया गया है। इस लिहाज से 'भूदान', 'आदर्श कुक्कुट गृह' आदि उनकी महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं। 'हंसा जाई अकेला' प्रेम संवेदना की कहानी है। 'गुलरा के बाबा' में ग्रामीण जीवन के बदलते यथार्थ को दर्शाया गया है। **शिव प्रसाद सिंह** की 'कर्मनाशा की हार' में ग्रामीण जीवन की रूढ़ियों और संकीर्णताओं का चित्रण किया गया है। 'अरूंधती', 'केवड़े का फूल', 'रेती' आदि कहानियों में उन्होंने स्त्री के साथ होने वाले ज्यादतियों का चित्रण किया है। विवेकी राय ने अपनी कहानियों में आजादी के बाद उपेक्षित गाँवों को विषय बनाया है। शानी मध्यवर्ग और मुस्लिम जीवन का चित्र खींचते हैं। **रांगेय राघव** ने मध्यवर्ग, सत्ता-व्यवस्था, मजदूरों की स्थिति, बेरोजगारी तथा आम जन की पीड़ा को अपनी कहानियों में पिरोया, परंतु उनकी हिंदी कहानी में उनकी प्रतिष्ठा उनकी बेहद सराही गई कहानी 'गदल' के कारण है। इस कहानी में एक ओर प्रेम-संबंध की सूक्ष्म अभिव्यक्ति हुई है वहीं स्त्री के स्वाभिमान को बड़े ही संवेदनशील रूप से प्रस्तुत किया गया है। 'मृगतृष्णा', 'कुत्ते की दुम और शैतान' आदि इनकी अन्य कहानियाँ हैं। **शैलेश माटियानी** की कहानी के दो आयाम हैं – एक ओर उन्होंने पहाड़ी जीवन से संबद्ध कई महत्वपूर्ण कहानियाँ लिखीं। ऐसी कहानियों में 'रमौती', 'जिबूका', 'पोस्टमैन', 'कालिका अवतार', 'वह तू ही था' आदि उल्लेखनीय हैं। 'कालिक अवतार' में इस समाज-विशेष के अंधविश्वास को विषय बनाया गया है। 'जिबूका' में यह दर्शाया गया है कि एक निम्न तबके का बच्चा पारिवारिक कुत्सा का कैसे शिकार होता है। पहाड़ी जीवन से अलग इन्होंने बंबई के निम्नवर्गीय तथा हाशिए के जीवन-यथार्थ को अपनी कहानियों में प्रमुखता से स्थान दिया है। 'गंगाराम वल्द जमनादास', 'चिथड़े', 'सिने गीतकार', पत्थर आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं। निर्मल वर्मा स्मृति-दंश, चीख और टेरर उभारने में माहिर हैं। **हरिशंकर परसाई** अपने व्यंग्य से कहानी को नया रूप देते हैं। उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी और कृष्णा सोबती अपनी कहानियों में आधुनिक महिलाओं की परेशानियों, समस्याओं और दुविधाओं का चित्रण करती हैं। **उषा प्रियंवदा** की प्रसिद्ध कहानी 'वापसी' में परिवार के अंदर बुजुर्ग की उपेक्षा का चित्रण किया गया है। उनकी 'मछलियाँ', 'सागर पार संगीत', 'झूठा दर्पण' आदि कहानियों में प्रेम संबंध को विविध रूपों में दर्शाया गया है। **मन्नू भंडारी** के 'त्रिशंकु' में प्रेम के संदर्भ में परंपरागत दृष्टिकोण तथा आधुनिक दृष्टिकोण के अंतर्द्वंद्व का चित्रण किया गया है। 'रानी माँ का चबूतरा' में स्त्री संघर्षशीलता और स्वाभिमान को उभारा गया है। 'यही सच है' तथा 'ऊँचाई' में प्रेम के संदर्भ में कहानीकार परंपरागत दृष्टिकोण को अस्वीकार करतीं हैं। साथ ही इन्होंने अपनी कहानियों में पुरानी पीढ़ी के अस्वीकार और नई पीढ़ी की परिवार के प्रति उदासीनता का भी चित्रांकन किया है।

बोध प्रश्न-1

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के दिए गए विकल्प में से सही विकल्प का चुनाव कीजिए।

(i) 'कहानी' पत्रिका का पुनर्प्रकाशन कब आरंभ हुआ?

(क) 1953 ई. (ख) 1954 ई. (ग) 1961 ई. (घ) इनमें से कोई नहीं।

(ii) 'नई कहानी' में व्यंग्य का सबसे सशक्त प्रयोग किस कहानीकार ने किया है?

(क) निर्मल वर्मा (ख) मोहन राकेश (ग) उषा प्रियंवदा (घ) हरिशंकर परसाई

(iii) गाँवों से विस्थापन की पीड़ा इनमें से किस कहानीकार की कहानियों में अभिव्यक्त हुई है?

(क) मोहन राकेश (ख) मन्नू भंडारी (ग) फणीश्वरनाथ रेणु (घ) राजेन्द्र यादव

(iv) डॉ. नामवर सिंह ने किस कहानी को नई कहानी की पहली कहानी कहा?

(क) 'भूदान' (ख) 'रसप्रिया' (ग) 'दोपहर का भोजन' (घ) 'परिंदे'

(v) 'कर्मनाशा की हार' शीर्षक कहानी के लेखक कौन हैं?

(क) शिवप्रसाद सिंह (ख) मार्कंडेय (ग) शानी (घ) कृष्णा सोबती

(ख) 'नई कहानी' के दौर में लिखी गई ग्रामीण कहानियों की विशिष्टताओं का उल्लेख कीजिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

(ग) 'नई कहानी' को यह नाम क्यों दिया गया, इसे स्पष्ट करते हुए इसकी संवेदनागत विविधता पर प्रकाश डालिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

13.3 साठोत्तरी कहानी

1960 ई. के बाद 'अकहानी', 'सचेतन कहानी', 'सहज कहानी', 'समांतर कहानी' आदि अनेक कहानी आंदोलन चले। ये आंदोलन कहानीकार के अपने अस्तित्व और कला के प्रति सचेत होने का प्रमाण है। इसमें कई स्वर थे। एक ओर कुंठा, निराशा, पलायन आदि के भाव थे तो साथ ही जीवन के प्रति आशा और आस्था पर बल दिया गया। 'सचेतन कहानी' के पुरोधा डॉ. महीप सिंह हैं। उनके अनुसार इस आंदोलन ने कहानी को व्यक्तिपरकता की परिधि से बाहर निकालकर वैचारिक धरातल पर प्रतिष्ठित किया है। सचेतन एक ऐसी दृष्टि है जिसमें जीवन के प्रति आस्था है, विश्वास है। जीवन से नहीं बल्कि जीवन की ओर भागना ही मनुष्य की नियति है। डॉ. गंगाप्रसाद विमल 'एंटी स्टोरी' की तर्ज पर 'अकहानी' के प्रमुख प्रवक्ता बने। इसमें सबकुछ के अस्वीकार पर बल दिया गया। साठोत्तरी कहानी के प्रमुख कहानीकार हैं – ज्ञानरंजन, काशीनाथ सिंह, दूधनाथ सिंह, रवीन्द्र कालिया, महेन्द्र भल्ला, राजकमल चौधरी आदि। 'अकहानी' का बहुत बड़ा भाग संबंधों पर केंद्रित है। संबंध में आ रहे अपरिचय, विक्षोभ आदि को प्रमुखता से स्थान दिया गया है। इस दृष्टि से **ज्ञानरंजन** की 'पिता', 'शेष होते हुए', 'यात्रा', 'संबंध' आदि महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं। **काशीनाथ सिंह** की 'आखिरी रात', 'सुबह का डर', **रवीन्द्र कालिया** की 'त्रास' भी संबंधों में आ रहे अजनबीयत को दर्शाती है। **ज्ञानरंजन** की कहानी 'फेंस के इधर उधर' में सामाजिक संबंधहीनता की कहानी है। इसके अलावा 'पिता', 'अमरूद का पेड़' जैसी कहानियों में परिवार में बनते–बिगड़ते संबंधों, पुरानी और नई पीढ़ी के संघर्ष और उससे उत्पन्न यातना को उकेरा गया है। मध्यवर्गीय अवसरवादिता, दोहरापन, पलायन आदि की प्रवृत्ति को ज्ञानरंजन ने प्रमुखता से उठाया है। इस दृष्टि से उनकी 'घंटा' और 'बहिर्गमन' महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं। **रवींद्र कालिया** की कहानियाँ भी नगर-बोध की कहानियाँ हैं। इसमें महानगर की नकली और झूठी जिंदगी जीते इन्सान को बार-बार उभारा गया है। इसमें संबंधों के टूटने, मूल्यों की गिरावट और अकेलेपन का चित्रण है। 'बड़े शहर का आदमी', 'क ख ग', 'नौ साल छोटी पत्नी' उनकी प्रमुख कहानियाँ हैं। 'चाल' शीर्षक कहानी में उन्होंने बेरोजगारी की बेबसी और उससे दाम्पत्य संबंध में आती अजनबीयत को दर्शाया है। **काशीनाथ सिंह** की कहानियों, जैसे 'सुबह का डर', 'चायघर में मृत्यु', 'लोग बिस्तरों पर' आदि में आधुनिक जीवन की विसंगतियों और संवेदनाओं की मौत को बड़े ठंडेपन से पेश किया गया है। 'सुबह का डर' में एक आदमी अस्पताल में मौत से जूझ रहा है और दूसरा तफरीह कर रहा है। मरती हुई संवेदनाओं का अच्छा चित्रण इस कहानी में हुआ है। 'चायघर में मृत्यु' में कहानीकार कहना चाहता है कि मृत्यु चरम सत्य है परंतु मनुष्य की जीने की अदम्य लालसा जीवन का सत्य है। **काशीनाथ सिंह** ने 'लोग बिस्तरों पर' कहानी में फैंटेसी के जरिए अस्मिता और अस्तित्व का सवाल सामने रखा है। 'कस्बा, जंगल और साब' में अपने परिवेश से कट जाने और अकेले रहने के लिए अभिशप्त होने की कथा आई है। अकहानी के पुरोधा **गंगाप्रसाद विमल** की कहानियों में आंतरिक अकेलापन, खालीपन, अस्तित्वहीनता, एकांत, भय आदि चित्रित हुआ है। 'विध्वंस', 'शहर में' और 'बीच की दीवार' उनकी चर्चित कहानियाँ हैं। अकहानी से जुड़ी **ममता कालिया** ने अपनी कहानियों में टूटते रिश्तों और संबंधों का वर्णन किया है। 'बीमारी' कहानी में भाई–बहन के 'आधुनिक रिश्ते' को अंजाम दिया गया है जहाँ अस्पताल जाती बहन से भाई उसकी बीमारी का खर्च माँगता है और बहन टैक्सी के इंतजार में है, बीमारी के खर्च के एवज में वह चेक काट चुकी है। **विजयमोहन सिंह** ने भी अपनी कहानियों में जीवन की विसंगति उजागर की है। 'कितना अलग' और 'भीड़ के बाद' उनकी चर्चित कहानियाँ हैं।

दूधनाथ सिंह आधुनिकता बोध के कहानीकार हैं। उनकी कहानियों में यह बोध जटिल और

उलझे हुए रूप में सामने आता है। 'कबंध' नामक कहानी में समकालीन जीवन में पनपी संवादहीनता की स्थिति को दर्शाया गया है। परंतु कहानीकार ने इस एकालाप को संवाद में ढालने का इशारा कर अपनी आशावादिता प्रकट की है। वह टूटते समाज के जुड़ने की बात करता है। उनकी लंबी कहानी 'सुखांत' में फैंटेसी के माध्यम से समकालीन बौद्धिक संसार को उभारने का प्रयत्न किया गया है। आज मनुष्य अपने परिवेश की दीवारों में कैद है। कथानायक इन्हीं दीवारों को तोड़ने का प्रयत्न करता है। समाज को जोड़ने और परिवेश की घुटन को तोड़ने का प्रयत्न कर कहानीकार ने सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया है। 'रीछ' भी एक प्रतीकात्मक कहानी है जिसमें प्रेम और दाम्पत्य के तनाव को उजागर किया गया है।

राजकमल चौधरी की कहानियों में सेक्स के परंपरागत ढाँचों और मूल्यों को तोड़ने का प्रयत्न किया गया है। उनकी 'पिरामिड' कहानी इसका स्पष्ट उदाहरण है।

महेंद्र भल्ला की कहानियाँ पाठक के परंपरागत मन को धक्का पहुँचाती हैं, जब वह एक पात्र को सोचते हुए पाता है कि 'अगर वह मेरी पत्नी न होती तो उसे चूम लेता।' 'एक पति के नोट्स' और महेंद्र भल्ला की अन्य कहानियों में सेक्स का गैर परंपरागत उपयोग किया गया है। इसके अलावा उनकी कहानियों में नगर का एकाकीपन भी बार-बार उभरता है।

इस दौर की कहानियों में आधुनिकता शहरों तक सीमित रह गई। गाँवों तक इसकी पहुँच बहुत धीमी और ढीली है। इसलिए आधुनिक बोध भी नगर-बोध और नगरीकरण में सिमट कर रह गया। परंतु हर नगर का अपना अलग बोध होता है, खासकर कस्बाई बोध, नगरीय बोध और महानगरीय बोध में तो अच्छा-खासा फर्क होता है। **गिरिराज किशोर** की कहानियों में यही बोध जिंदगी के खोखलेपन, खालीपन और रिश्तों के टूटने के रूप में प्रकट हुआ है। उनकी कहानियों में मनुष्य के मन में पड़ी गाँठों को खोलने की कोशिश की गई है।

साठोत्तरी कहानी में प्रतीकों का प्रचुरता से इस्तेमाल होता रहा। महीप सिंह, जगदीश चतुर्वेदी, हृदयेश, हिमांशु जोशी, मृदुला गर्ग, बदीउज्ज्माँ आदि कहानीकारों ने प्रतीकों का इस्तेमाल किया। महीप सिंह की कहानी में 'कील' एक प्रतीक है। दूधनाथ सिंह और गंगाप्रसाद विमल के प्रतीक समझने में कठिन हैं। अधिकांश पाठकों के लिए ये कहानियाँ पहेली बनकर रह जाती हैं। दूधनाथ सिंह की कहानी 'रीछ' को समझने के लिए प्रतीक को समझना जरूरी है। इसमें कहानीकार के व्यक्तिगत द्वंद्व को व्यक्त किया गया है। उन्होंने अपनी कहानियों में चमत्कारपूर्ण कथा शिल्प अपनाया है। इस प्रकार साठोत्तर काल के हिंदी कहानीकारों ने शिल्प के क्षेत्र में साहसिक प्रयोग किए हैं।

'सचेतन कहानी' के कहानीकारों में महीप सिंह, मनहर चौहान, धर्मेन्द्र गुप्त आदि प्रमुख हैं। **महीप सिंह** की 'पानी और पुल' देश-विभाजन के बाद की परिस्थितियों पर आधारित कहानी है। 'सन्नाटा' कहानी में उन्होंने महानगरीय जीवन में घर कर गए संवादहीनता को विषय बनाया है। **मनहर चौहान** की 'बीस सुबहों के बाद' भी शहरी अजनबीपन को दर्शाता है। इस कहानी में एक लॉज के एक ही कमरे में रहने वाले दो व्यक्तियों के बीच नौकरी की भागमभाग और दिनचर्या के अंतर के कारण बीस दिन बाद मुलाकात हो पाती है।

'सहज कहानी' के प्रस्तावक अमृत राय ने कहानी में उब, कुंठा, घुटन की जगह कथा-रस के वापसी का प्रस्ताव किया, पर सहज कहानी का कोई रचनात्मक प्रभाव नहीं दिखाई देता।

'समांतर कहानी' का नेतृत्व करते हुए कमलेश्वर ने कहानी में आम आदमी की पुनः वापसी पर बल दिया। मधुकर सिंह, इब्राहीम शरीफ, जितेन्द्र भाटिया, निरूपमा सेवती आदि इस कहानी आंदोलन से जुड़े थे।

'सक्रिय कहानी' को राकेश वत्स ने चलाया था जिसमें राकेश वत्स, रमेश बतरा आदि शामिल थे।

इस दौर में श्रीकांत वर्मा, मुक्तिबोध, कुंवर नारायण जैसे हिंदी के कवियों ने भी कहानियाँ लिखी हैं। **मुक्तिबोध** ने 'विपात्र' और 'ब्रह्मराक्षस' में एक कलाकार के तनाव और बेचैनी को प्रस्तुत किया है। अपनी बात कहने के लिए मुक्तिबोध कहानी की संरचना को तोड़ने में संकोच नहीं करते। **सर्वेश्वेर दयाल सक्सेना** की कहानी 'छाता' में आधुनिक संवेदना उभरी है। **रघुवीर सहाय** ने अपनी कहानी 'मेरे और नंगी औरत के बीच' में स्त्री-पुरुष के नए संबंध को उजागर किया है। **धर्मवीर भारती** की कहानी 'बंद गली का आखिरी मकान' पर मृत्यु-बोध की छाया मंडराती रहती है।

बोध प्रश्न-2

(क) निम्नलिखित कहानी के कहानीकारों का नाम बताइए।

कहानी		कहानीकार
(i) चायघर में मृत्यु	–	.....
(ii) कबंध	–	.....
(iii) बड़े शहर का आदमी	–	.....
(iv) एक पति के नोट्स	–	.....
(v) बहिर्गमन	–	.....

(ख) 'नई कहानी' के बाद के कहानी-आंदोलनों का परिचय दीजिए।
(उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

13.4 समकालीन कहानी

कहानी आंदोलनों के बाद की कहानी को सामान्यतः समकालीन कहानी के अंतर्गत रख कर अध्ययन किया जाता है। समकालीन दौर की कहानियाँ किसी प्रकार के दिशा-निर्देश से निर्देशित नहीं है तथा उसमें एक जनपक्षधरता के रूझान की निरंतर मौजूदगी है। इसमें एक क्षीण-सी धारा ग्रामीण जीवन पर लिखने वाले कथाकारों की भी है। आगे चलकर समकालीन कहानी में सांप्रदायिकता का प्रतिरोध तथा भूमंडलीकरण के बाद उत्पन्न नए यथार्थ का चित्रण प्रमुख रूझान बना जो वर्तमान में भी जारी है।

समकालीन दौर में भारतीय समाज ने सांप्रदायिकता की विद्रूप स्थिति को कई रूपों में देखा। अस्सी के दशक में पंजाब में आतंकवाद का उभार हुआ। इसने सदियों के हिंदू और सिख समाज के बीच की परस्परता को झकझोर दिया। अरुण प्रकाश की 'भैया एक्सप्रेस', स्वयं प्रकाश की 'क्या तुमने सरदार भिखारी देखा है', भीष्म साहनी की 'झुटपुटा' तथा महीप सिंह की 'आओ हँसे' इसके विविध आयामों पर प्रकाश डालती है। नब्बे के दशक में भारत में एक बार पुनः सांप्रदायिक ध्रुवीकरण हुआ। बहुसंख्यक तथा अल्पसंख्यक समुदाय के बीच रंजिश बढ़ गई। अबकी बार वैमनस्य का एक पक्ष मुस्लिम समुदाय था। इस सांप्रदायिक रंजिश के विविध पक्षों को समकालीन हिंदी कहानी में प्रमुखता से स्थान दिया गया है। असगर वजाहत की कहानी 'जख्म' सांप्रदायिकता के संदर्भ में तथाकथित बौद्धिक समाज के पाखंड को उजागर करती है। उदय प्रकाश की '... और अंत में प्रार्थना' में यह दर्शाया गया है कि एक धार्मिक रूप से आस्थावान व्यक्ति भी किस प्रकार धर्म के नाम पर चल रहे कुचक्र का शिकार हो जाता है। अखिलेश की कहानी 'अंधेरा' में सांप्रदायिकता की प्रक्रिया में सत्ता की संलग्नता तथा युवा-प्रेम द्वारा उसके प्रतिरोध को दर्शाया गया है। स्वयं प्रकाश की कहानी 'पार्टीशन' में समाज में धर्मगत अलगाव की भावना तथा इसके कारण एक जहीन व्यक्ति का प्रतिक्रियावादी व्यक्ति में बदलने की प्रक्रिया का चित्रण किया गया है।

नब्बे के दशक में भारत में बड़ा आर्थिक परिवर्तन हुआ। भारत ने मिश्रित अर्थव्यवस्था की जगह पर मुक्त बाजार व्यवस्था को अपना लिया। सरकार ने उत्पादन के क्षेत्र में अपनी भूमिका को सीमित कर धीरे-धीरे सबकुछ बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हवाले कर दिया। इन कंपनियों का मुख्य जोर उपभोक्तावाद को बढ़ावा देने पर था। इस उपभोक्तावाद ने समाज की मूल्य-व्यवस्था को सिरे से बदल दिया। अब बाजार द्वारा प्रसारित भोगवाद का बोलबाला हो गया। मानवीय संबंधों की परस्परता में ह्रास आया। विज्ञापन जीवन का नियामक होने लगा। इस बदलती हुई जीवन-स्थिति को हिंदी कहानी में बार-बार व्यक्त किया जा रहा है। काशीनाथ सिंह की कहानी 'कौन ठगवा नगरिया लूटल हो' इस बाजार-तंत्र के बहुस्तरीय प्रभाव को दर्ज करती है। इस कहानी में यह दर्शाया गया है कि कैसे बाजारवादी शक्तियाँ नए तकनीकों के प्रयोग से लोगों के परस्परता को खत्म कर रही हैं। भोगवाद प्रमुख हो गया है, पारिवारिक मूल्य ध्वस्त हो रहे हैं। बाजारवादी मानदंड के तहत पारिवारिक मूल्यों के ध्वस्त होने की कथा अखिलेश की 'शापग्रस्त', 'जलडमरूमध्य' तथा उदय प्रकाश की 'पॉल गोमरा का स्कूटर' में भी कही गई है। संजय खाती की कहानी 'पिंटी का साबुन' आज की उस स्थिति का बयान करती है जिसमें उपभोग की वस्तुएँ मानवीय संबंध से ज्यादा प्रश्रय पा रही हैं। रघुनंदन त्रिवेदी की कहानी 'इंद्रजाल' विज्ञापन के दुष्प्रभाव को सामने लाती है। जयनंदन की 'विश्व बाजार का ऊँट', रमेश उपाध्याय की 'डॉक्युड्रामा', संजीव की 'लिटरेचर,' धीरेन्द्र अस्थाना की 'पिता' आदि कहानियाँ भूमंडलीकरण-बाजारवाद के विभिन्न आयामों का उद्घाटन करती हैं।

अब तक के विवेचन से यह स्पष्ट है कि हिंदी कहानी आरंभ से ही आधुनिकता बोध से

अनुप्राणित और संचालित होती रही है। प्रेमचंद के बाद फणीश्वरनाथ रेणु, मार्कंडेय, शिवप्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र और विवेकी राय को छोड़ दें तो अधिकांश कहानीकारों की कहानियों में नगर बोध ही प्रकट हुआ है। औद्योगीकरण और शहरीकरण की मार से त्रस्त व्यक्तित्व बार-बार कहानी में प्रकट होता है। इंसान नए संबंधों की तलाश में है और वह इन नए संबंधों से जुड़ने की यातना से गुजरता है। वह अजनबीपन और बेगानेपन की पीड़ा से त्रस्त है। शहर तेजी से बढ़ते जा रहे हैं। कस्बा शहर में, शहर नगर में और नगर महानगर में बदलते जा रहे हैं। लोगों की मानसिकता भी बदल रही है। इसी मानसिकता को 'नई कहानी' और उसके बाद की कहानियों में भिन्न-भिन्न रूपों में व्यक्त किया गया है।

यह सही है कि प्रेमचंद के बाद हिंदी कहानी में 'नगरीय बोध' का वर्चस्व बढ़ता चला गया। आधुनिकीकरण के नाम पर हुआ औद्योगीकरण, शहरीकरण और उससे नए संबंधों के जन्म और तलाश की यातना को हिंदी कहानी अभिव्यक्त करने लगी। लेकिन एक क्षीण किंतु मजबूत और स्पष्ट धारा ग्रामीण बोध के रचनाकारों का भी है जिन्होंने आधुनिक दृष्टि से ग्रामीण समस्याओं को देखने-सुलझाने का सार्थक और सर्जनात्मक प्रयत्न किया है। इनमें फणीश्वरनाथ रेणु, मार्कंडेय, शिवप्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र और विवेकी राय के नाम प्रमुख हैं। इन सभी रचनाकारों ने ग्रामीण समस्याओं और गाँव में बदलते संबंधों और आधुनिकता के थोड़े बहुत प्रवेश को बड़ी संजीदगी से पेश किया है। रामदरश मिश्र की कहानी 'एक औरत : एक जिंदगी' में अपने परिवेश से लड़ती विधवा नारी का चित्रण किया गया है। ग्रामीण कथाकारों ने 'प्रेम' के बड़े ही जटिल रूप का चित्रण अपनी कहानियों में किया है। 'नई कहानी' के दौर में रेणु की 'तीसरी कसम' और शिवप्रसाद सिंह की 'नन्हों' इसका उत्तम उदाहरण है। इस प्रकार का चित्रण आधुनिकता बोध से प्रेरित और संचालित है।

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक से कहानीकार फिर से गाँव की ओर मुड़ा है और कई अच्छी कहानियाँ सामने आई हैं। शेखर जोशी, शिवमूर्ति, अरुण प्रकाश, संजीव और मिथिलेश्वर ग्रामीण पृष्ठभूमि पर अच्छी कहानियाँ लिख रहे हैं। इनमें नए ढंग के गाँवों का चित्रण हुआ है जो प्रेमचंद और रेणु यहाँ तक कि शिवप्रसाद सिंह और रामदरश मिश्र के गाँवों से भी अलग है।

रामदरश मिश्र की कहानियों में भी गाँव का दर्द, अनुभूति और संवेदना व्यक्त हुई है। लेकिन उनकी कहानियाँ केवल गाँव की ही कथा नहीं कहतीं बल्कि शहरी संवेदना और समग्र रूप से मानवीय संवेदना को भी उनकी कहानियों में जगह मिली है। अपने कहानी संग्रह 'फिर कब आएँगे' में उन्होंने युगीन संकटों और हादसों का बयान किया है।

शिवमूर्ति ने 'भारतनाट्यम' कहानी में ग्रामीण यथार्थ को चित्रित किया है। उन्होंने इस यथार्थ को उसकी समस्त जटिलताओं और पेंचदगियों के साथ प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार 'तिरिया चरित्तर' में भी परिवेश गाँव का ही है।

गाँव में सरकारी योजना आई और इस योजना के साथ आया भ्रष्टाचार और शहर से आयातित हुई अनैतिकता। **विवेकी राय** ने अपनी कहानियों में इसी यथार्थ को बेपर्द किया है। आजादी के बाद भारत के गाँवों की जैसी उपेक्षा हुई है और जिस प्रकार विकास के नाम पर लूट मची हुई है, इनका जवाब शायद सत्ता के गलियारे में न मिले पर समकालीन रचनाओं में इन्हें अवश्य ढूँढा जा सकता है। विवेकी राय की कहानियों में चरित्र नहीं स्थितियाँ प्रधान हैं, इसलिए उनकी कहानी में हिरामन जैसा पात्र नहीं है। विवेकी राय ठेठ गँवई अंदाज में कहानी कहते हैं। 'बाढ़ की यमदाढ़', 'गोबरभवन में एक दिन', 'तिल-मूँग', 'रावण' आदि उनकी कुछ उल्लेखनीय कहानियाँ हैं। विवकी राय ऐसे कहानीकार हैं जिन्होंने ग्रामीण जीवन को न केवल देखा है बल्कि उन्होंने उस परिवेश को जिया है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह की कहानियाँ भी लोक-रस में रची बसी होती हैं। परंतु उनकी कहानियों में मुसलमानों की सोच और संवेदनशीलता को भी अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है। 'रफ रफ मेल' ऐसा ही एक प्रसिद्ध कहानी संग्रह है।

मिथिलेश्वर लोक मन के कथाकार हैं। उनकी रचनाओं में गँवई जिंदगी में मौजूदा शोषण और उसके खिलाफ चल रही लड़ाई का चित्रण हुआ है। 'भोर होने से पहले' में कहानीकार का स्तर आशावादी है। उनका मानना है कि सुबह तो होगी ही परंतु, सुबह होने तक अंधेरे से संघर्ष तो करना ही है।

असगर वजाहत, पंकज बिष्ट और स्वयं प्रकाश समकालीन यथार्थ को सहज रूप में चित्रित करते हैं। **पंकज बिष्ट** ने अपनी कहानी 'टुंड्रा प्रदेश' में दो बच्चों की कहानी के जरिए, समाज में व्याप्त सामाजिक और आर्थिक विषमता पर तीखा व्यंग्य किया है। आज हमारे समाज में अनेक 'घर' ऐसे हैं जिनका गुजारा 'बच्चों के श्रम' पर होता है। इसी बाल श्रम की दारुण स्थिति का चित्रण करते हुए पंकज बिष्ट ने यथार्थ का एक नया रूप सामने रखा है। सृंजय ने अपने कहानी संग्रह 'कामरेड का कोट' में राजनैतिक व्यवस्था पर कटाक्ष किया है। **शेखर जोशी** ने पहाड़ी पृष्ठभूमि पर अनेक कहानियाँ लिखी हैं जो 'मेरा पहाड़' नामक कहानी संकलन में संकलित हैं। 'हलवाहा' और 'दाज्यू' इस संकलन की उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। वीरेंद्र सक्सेना ने अपनी कहानियों में मुख्य रूप से 'स्त्री-पुरुष' संबंध को ही आधार बनाया है। विजय ने अपने कहानी संग्रहों 'अभिमन्यु', 'गंगा और डेल्टा' और 'किले' में विभिन्न सामाजिक संदर्भों को उठाया है।

बदीउज्जमाँ की कहानी 'दुर्ग' (1972) में दुर्ग आज की सड़ाँध भरी और दमघोंटू व्यवस्था का प्रतीक है जिसे फैंटेसी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। फैंटेसी के माध्यम से इस कहानी में किले को तोड़ने की योजना बनाई गई है। किला पुरानी व्यवस्था का प्रतीक है जिसका टूटना नई व्यवस्था की माँग है। पंचतंत्र की कथा को आधार बनाकर बदीउज्जमाँ की लिखी कहानी 'चौथा ब्राह्मण' आगे बढ़ने की महत्वाकांक्षा में भाग-दौड़ करने वाले नागरिकों पर व्यंग्य है। गाँव से उखड़कर शहर में बसे लोग निर्मूल, अजनबी और एक दूसरे से अनजान बन गए हैं। अलगाव, ऊब और संत्रास ने उन्हें घेर लिया है।

कामतानाथ की कहानियों में यातना का स्वर प्रमुख है। उनकी प्रसिद्ध कहानी 'पूर्वार्द्ध' में एक व्यक्ति के परिवार के प्रति लापरवाह होने से पूरे परिवार की बर्बादी का चित्रण किया गया है। वह अपने परिवार से छुटकारा पाने के प्रयत्न में अजीब सी अजनबीयत से घिर जाता है। इससे उसमें भीतर और बाहर तनाव पैदा होता है, जिससे यातना का परिवेश निर्मित होता है।

उदय प्रकाश और अखिलेश ने विषयवस्तु की नवीनता तथा कथन की भंगिमा से समकालीन कहानी में महत्वपूर्ण हस्तक्षेप किया है। **उदय प्रकाश** की 'तिरिछ' में शहरी अपरिचय, आक्रमकता और अमानवीयता का चित्रण किया गया है।

अखिलेश ने 'ऊसर', 'बायोडाटा' – इन दोनों कहानियों में राजनीति से नैतिकता के पूर्णतः लोप होने की स्थिति का चित्रण किया है। इन कहानियों के केंद्र में युवा वर्ग है जो राजनीति को कैरियर के रूप में साधना चाहते हैं और उनमें कोई आदर्श या परिवर्तनकारी चेतना नहीं है। उनकी प्रसिद्ध कहानी 'चिट्ठी' युवाओं की बेरोजगारी और विकल्पहीनता को सामने लाती है। 'ग्रहण' में अखिलेश ने दलित समुदाय के शोषण तथा प्रतिक्रिया में उनके प्रतिरोध का चित्रण किया है।

आम लोगों तथा हाशिए के लोगों के जीवन की विभिन्न स्थितियों को अपनी कहानियों में

अरुण प्रकाश ने प्रमुखता से उठाया है। उनकी 'विषमराग' में कामकाजी मजदूर वर्ग का स्वाभिमान और संघर्ष की अभिव्यक्ति हुई, 'बेला एक्का लौट रही है' में आदिवासी समाज की स्त्री के संघर्ष और टूटन की कहानी है।

13.5 दलित संदर्भ

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में दलित चेतना से संपृक्त अनेक कहानियाँ लिखी गई हैं। मार्कंडेय का 'हलयोग', हृदयेश की कहानी 'मनु' और ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'बैल की खाल' और 'सलाम' तथा विभांशु दिव्याल की 'गड़ासा' इस दृष्टि से उल्लेखनीय कहानियाँ हैं।

मार्कंडेय की कहानी 'हलयोग' सवर्ण मानसिकता पर सीधे आघात करती है। इसमें शिक्षित दलित युवक पर तरह-तरह के जुल्म ढाए जाते हैं। इस प्रकार की क्रूरता दिल को दहला देती है। **हृदयेश** ने 'मनु' कहानी में बदलते माहौल का खुला बयान किया है। उन्होंने इस कहानी में स्पष्ट रूप से व्यंजित किया है कि जो बदलते माहौल के साथ नहीं बदल सकता, उसे अपमानित होना होगा और सहन शक्ति न हुई तो मरना भी होगा। 'मनु' के ब्राह्मण पं. सत्यनारायण अपने को बदल नहीं पाते, अपने पाखंड और घिसे पिटे संस्कार को छोड़ नहीं पाते। उन्हें इस बात का अहसास है कि जूता गाँठने वाला भी उनसे ज्यादा कमा लेता है। लेकिन वे जूता गाँठ नहीं सकते और उनकी परंपरागत 'मजूरी' या 'दिहाड़ी' खत्म हो चुकी है। तब मरने के सिवा और कौन रास्ता बचता है। पंडित सत्यनारायण पंडिताई नहीं छोड़ते आत्महत्या कर लेते हैं।

इधर स्वयं दलित कथाकारों ने हिंदी कहानी में महत्वपूर्ण हस्तक्षेप किया है। उन्होंने परंपरागत सौंदर्यशास्त्र के मानदंड को अस्वीकार करते हुए नकार तथा विद्रोह को अपना मानदंड बनाया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि, सूरजपाल चौहान, मोहनदास नैमिशराय, प्रहलादचंद्र दास आदि हिंदी कहानी को नयी दिशा और दृष्टि देने वाले प्रमुख कहानीकार हैं। **ओमप्रकाश वाल्मीकि** की कहानी 'यह अंत नहीं' में उच्च जाति के वर्चस्व वाले समाज में दलित समुदाय के शोषण की कथा सामने लायी गयी है। इस कहानी में उन्होंने यह भी दर्शाया है कि व्यवस्था किस प्रकार से दलितों के विरूद्ध पक्षपात करती है। 'शवयात्रा' में इन्होंने इस तथ्य का उद्घाटन किया है कि जाति व्यवस्था की विडंबना से दलित समाज भी मुक्त नहीं है। **सूरजपाल चौहान** की कहानी 'परिवर्तन की बात' में इस तथ्य को प्रस्तुत किया गया है कि दलित समाज द्वारा अपनी सामाजिक हैसियत के उत्थान के लिए किए गए हर प्रयास को प्रभुत्वशाली जातियाँ असफल बनाने की चेष्टा करती हैं। **मोहनदास नैमिशराय** की कहानी 'अपना गाँव' परंपरागत, शोषणयुक्त ग्रामीण सामाजिक संरचना के प्रतिकार की कहानी है। **प्रहलादचंद्र दास** की कहानी 'लटकी हुई शर्त' में दलित समुदाय के आत्मसम्मान की तलाश की कथा कही गयी है। प्रेम कपाड़िया की 'जीवन साथी' मोहनदास नैमिशराय की 'महाशूद्र', 'आवाजें', डॉ. कुसुम 'वियोगी' की 'आटे सने हाथ', विपिन बिहारी की 'आमने–सामने', नीरा परमार की 'वैतरणी', कावेरी की 'सुमंगली', डॉ. कुसुम मेघवाल की 'अंगारा' आदि दलित जीवन से जुड़ी कुछ अन्य महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं।

13.6 हिंदी कहानी में स्त्री-स्वर

हिंदी कहानी की विकास यात्रा में स्त्री-स्वर की महत्वपूर्ण उपस्थिति रहा है। आरंभ से ही हिंदी कहानी में स्त्री चेतना और स्त्री मानस और उनकी बदलती स्थिति को कहानीकारों ने अपनी कहानियों में केंद्रीयता प्रदान की है। यूँ तो 'एक टोकरी भर मिट्टी' में ही नारी के सबल

होते रूप का चित्रण हुआ है, जिसे प्रेमचंद ने ऊँचाई दी और जिसे आज की महिला कथाकार नए आयाम दे रही हैं। **चंद्रकिरण सौनरेक्सा** हिंदी की प्रारंभिक सशक्त महिला कहानीकारों में है। उनकी पहली कहानी 'घीसू चमार' 1931 ई॰ में प्रकाशित हुई थी। चंद्रकिरण सौनरेक्सा ने अपने समय की नारियों के जीवन के विविध पक्षों का चित्रण अपनी कहानियों में किया है। 'गृहस्थी का सुख', 'पहली भूल', 'सुबह का भूला', 'एजुकेटेड वाइफ' आदि कहानियों में सामाजिक-पारिवारिक स्तर पर स्त्री के साथ होने वाले व्यवहार का चित्रण किया गया है। कालांतर में हिंदी कहानी में स्त्री-विमर्श का जो स्वरूप उभरा उसका प्रारंभिक बीज चंद्रकिरण सौनरेक्सा में दिखाई देता है। गोपाल राय के अनुसार, 'परंपरागत नारी-संहिता के विरूद्ध जिहाद छेड़ने वाली लेखिका के रूप में चंद्रकिरण स्मरणीय हैं।'आजादी के बाद महिलाओं को विकास के नए अवसर मिले और वे घर से बाहर निकलकर काम करने लगीं। परंतु उनकी परेशानी कम नहीं हुई बल्कि बढ़ गई, शायद यह कहना सही होगा कि पहले की परेशानियाँ तो बनी रहीं, नई परेशानियाँ और जुड़ गईं। उन्हें घर-बाहर दोनों सीमाओं पर पुरुष समाज से जूझना पड़ा। परंतु उन्होंने संघर्ष किया, साहस दिखाया, गिरी-पड़ीं, पर हार न मानी। हार न मानने वाली इन स्त्रियों का जीवन और संघर्ष 'नई कहानी' में उभरा और लगातार यह स्वर सबल होता गया। महिलाओं की समस्याओं, संघर्षों और लड़ाइयों को कई महिला कहानीकार अपनी कहानियों में अभिव्यक्ति दे रही हैं। इनमें प्रमुख हैं : मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, राजी सेठ, शशिप्रभा शास्त्री, मंजुल भगत, मधु कांकरिया, सूर्यबाला, चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा, चंद्रकांता, उर्मिला शिरीष, अलका सरावगी, मुक्ता, कमल कुमार आदि।

कृष्णा सोबती वरिष्ठ हिंदी कथाकार हैं जो 'नई कहानी' के जमाने से कहानियाँ लिखती रही हैं। उन्होंने सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टियों से नारी सबलीकरण से जुड़े सवाल उठाए हैं। उनके नारी पात्र कुंठित, डरपोक और दब्बू नहीं बल्कि जुझारू और संघर्षशील हैं। 'मित्रो मरजानी' की मित्रो में अभूतपूर्व साहस और निडरता है। वह पुरुष समाज की बनायी नैतिकताओं को धता बताते हुए सीना तानकर चलती है। 'ए लड़की' की मुख्य पात्र अम्मू मृत्यु की देहरी पर खड़ी है परंतु मृत्यु उसे डरा नहीं पाती। वह अपना जीवन सहज ढंग से जीती है। अम्मू का मानसिक द्वंद्व और अतीत की शृंखलाओं का सरस रचनात्मक उपयोग हुआ है। सोबती की कहानियों में करुणा और व्यंग्य का अद्भुत सम्मिश्रण है। **मन्नू भंडारी** ने अपनी कहानियों में प्रेम के अंतर्द्वंद्व, पुरूष सत्ता द्वारा आरोपित नैतिक वर्जना तथा स्त्री की संघर्षशीलता को अपनी कहानियों में प्रमुखता से स्थान दिया है। इस इकाई की 'नई कहानी' उपशीर्षक के अंतर्गत उनकी 'त्रिशंकु', 'यही सच है', 'ऊँचाई' तथा 'रानी माँ का चबूतरा' शीर्षक कहानियों की संवेदना के बारे में आप जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। आइए उनकी अन्य उल्लेखनीय कहानियों के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं। 'कील और कसक' कहानी में विवाह पश्चात यथार्थ के टकराहट से किस प्रकार एक युवती के सपने का अंत होता है इस विषय को अभिव्यक्ति दी गई है। 'ईसा के घर इंसान' में चर्च के धार्मिक माहौल में लड़कियों के घुटन और संघर्ष को विषय बनाया गया है। 'अकेली' में पुत्र की मृत्यु तथा पति के द्वारा परिवार-विमुख हो जाने के बाद स्त्री की पीड़ा का अंकन है। 'मैं हार गई', 'क्षय', 'रेत की दीवार', 'एक बार और', 'बाँहों का घेरा', बंद दराजों के साथ' आदि उनकी अन्य महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं।

मंजुल भगत ने लहूलुहान होती नारी और उसके जीवन को अपनी कहानी का विषय बनाया है। उनकी कहानियों के पात्र अपनी अस्मिता और सार्थकता ढूँढने के लिए संघर्ष करती दीख पड़ती हैं। कृष्णा सोबती के समान मंजुल भगत की नारी पात्र भी पुरुष के बनाए नैतिक दायरों को तोड़ती हैं। 'बूंद' की बानो और 'अनारो' की अनारो बहुत पढ़ी लिखी नहीं हैं पर अपनी अस्मिता और अधिकार के प्रति सचेत हैं। मंजुल भगत ने अपनी कहानियों में शहर के निम्न

वर्ग और ग्रामीण पात्रों को लिया है। उनकी कहानियों की नारी पात्र शोर नहीं करतीं, नारे नहीं लगातीं बल्कि मौन प्रतिरोध करती हैं। उनका मूक स्वाभिमान गौरतलब है। 'अंतिम बयान' नामक कहानी संग्रह इसका ज्वलंत उदाहरण है।

मृदुला गर्ग ने आरंभ से ही अपनी कहानियों में नारी की समस्याओं को विभिन्न कोणों से उठाया है और उन्हें संघर्ष की राह दिखाई है। वे भारतीय स्त्रियों की समस्याओं को जानती हैं, पहचानती हैं। उनकी नारी पात्रों में स्वतंत्रता की ललक है, बेड़ियों को तोड़ने की छटपटाहट है। इसी जड़ता को तोड़ने में संघर्षरत नारी के द्वंद्व का चित्रण मृदुला गर्ग ने अपनी कहानियों में किया है। 'अवकाश', 'कितनी कैदें', 'तीन किलो की छोरी', 'करार', 'चकरघिन्नी' आदि इनकी कुछ प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। मृदुला गर्ग ने अपनी कहानियों में स्त्री-पुरुष के नए संबंधों को उजागर किया है। ये संबंध जटिल से जटिलतर होते जा रहे हैं। उनकी कहानियों की नारी स्वावलंबी है, विवाहेतर प्रेम करने का साहस रखती है और अपने शरीर की भूख को स्वीकार करती है। 'अवकाश' कहानी की नारी दो बच्चों की माँ होने पर भी दूसरे पुरुष से प्रेम करती है और अपने पति को तलाक देना चाहती है। 'कितनी कैदें' में आदमी औरत के जटिल संबंधों को उजागर किया गया है। मौत का इंतजार कर रहे पति-पत्नी आदमी और औरत में बदल जाते हैं। लगता है यह कहानीकार की बुनियादी सोच है। मृणाल पांडे और मणिका मोहिनी ने भी स्त्री-पुरुष के बदलते संबंधों को लेकर कहानियाँ लिखी हैं।

राजी सेठ की कहानियों में आंतरिक टूटन, दरकन और पीड़ा का सूक्ष्म और संवेदनशील चित्रण हुआ है। उनकी कहानियाँ केवल नारी पात्रों की संवेदना तक सीमित नहीं है। घरेलू नौकरों के द्वंद्व और शोषण को भी उन्होंने मार्मिक बनाकर प्रस्तुत किया है। 'घोड़े से गदहे' कहानी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। 'आगत' का केंद्रीय पात्र अपाहिज है। कुल मिलाकर उनकी कहानियाँ मध्यवर्गीय जीवन में इर्द-गिर्द घूमती हैं।

सूर्यबाला ने अपनी कहानियों में नारी की थरथराती मानसिकता को पकड़ने का प्रयास किया है। उन्होंने कहानियों में पराए दुख को अपना दुख बनाकर प्रस्तुत किया है। विविध संवेदनाओं से युक्त उनकी कहानियों में अनुभूति का विस्तृत संसार मिलता है। 'अनाम लमहों के नाम', 'बिन रोई लड़की', 'उत्सव', 'बिहिश्त बनाम मौजीराम का झाड़ू', 'उजास', 'सुमिन्तरा की बेटियाँ', 'मुडेर पर' आदि उनकी कुछ उल्लेखनीय कहानियाँ हैं। जीवन के प्रति अखंड आस्था सूर्यबाला के रचना संसार का प्रमुख स्वर है।

चंद्रकांता की अधिकांश कहानियों की पृष्ठभूमि कश्मीर है परंतु उनकी कहानियों की आत्मा नारी सबलीकरण है। अपनी कहानियों में उन्होंने परिवार के दायरे में पिसती, टूटती, जूझती और परिवार के दायरे को तोड़कर बाहर निकलती स्त्रियों का चित्रण किया है। 'बस इतना ही', 'अनावृत्त', 'ओ सोनकिसरी', 'सूरज उगने तक', 'काली बर्फ' आदि उनकी कुछ प्रमुख कहानियाँ हैं।

चित्रा मुद्गल ने अपनी कहानियों में महिलाओं और खासकर छोटी बच्चियों के यौन शोषण और बलात्कार के भयावह पक्ष को प्रस्तुत किया है। 'प्रेतयोनि' नामक कहानी में बलात्कार की पीड़ा को झेलती लड़की के माँ-बाप ही उसके सबसे बड़े दुश्मन बन जाते हैं। परंतु लड़की आत्महत्या नहीं करती बल्कि अपने बलात्कार के खिलाफ पुलिस मुख्यालय के समक्ष प्रदर्शन करती है। 'जिनावर' संवेदनहीन होते सामाजिक संबंधों की कथा है। 'सुख' और 'स्टेपनी' में महिलाओं के यौन-शोषण और उनके संघर्ष की कहानी है। लेकिन मुद्गल की कहानियाँ केवल महिलाओं की संवेदनाओं और समस्याओं तक ही सीमित नहीं है बल्कि इनमें जीवन का बहुरंगी यथार्थ चित्रित हुआ है। 'शिनाख्त हो गई है', 'पानी का आदमी' और 'त्रिशंकु' इस दृष्टि से उल्लेखनीय कहानियाँ हैं।

मैत्रेयी पुष्पा नई पीढ़ी की चर्चित लेखिका हैं। उन्होंने गाँवों में महिलाओं के संघर्ष और सबल होती नारी का चित्रण किया है। गाँव में सबल होती नारी उनकी कहानियों का मुख्य स्वर है। 'चिन्हार', 'ललमनियाँ', 'फैसला' आदि उनकी प्रमुख कहानियाँ हैं।

ऋता शुक्ल महत्वपूर्ण महिला कथाकार हैं जिन्होंने गाँव के मन की पीड़ा को अपनी कहानियों में व्यक्त किया है। 'अमरो' में शहर की ओर पलायन और वृद्ध व्यक्ति की वेदना व्यक्त हुई है। 'मान-मरजाद' में दो पीढ़ियों की टकराहट है तो 'निष्कृति' में रिश्तों की मिठास है। 'सातवीं बेटी' गाँव में बेटियों के साथ होने वाले बर्ताव का चित्रण है जिसमें वे असमय मुरझा जाती हैं।

उर्मिला शिरीष की कहानियों में खुद को खोजती नारी की कई तस्वीरें हैं। 'शहर में अकेली लड़की' उनका ताजा कहानी संग्रह है। नई कहानीकारों में **अलका सरावगी** का नाम प्रसिद्धि पा रहा है। अलका सरावगी मध्यवर्ग के अनुभवों और संबंधों को बड़े ही सूक्ष्म और जटिल रूप में पेश करती हैं। 'कनफेशन', 'मन्नत', 'वाइल्ड फ्लाइवर हॉल' आदि उनकी कुछ चर्चित कहानियाँ हैं। **मधु कांकरिया** ने अपनी कहानियों में बाजारीकरण और उपभोक्तावाद के नए परिवेश में टूटते परिवार और अपने को बचाए रखने के लिए नारी के संघर्ष का चित्रण किया है। 'अंतहीन मरूस्थल' में इसी तर्ज की कहानियाँ संकलित हैं। **मुक्ता** ने 'पलाश वन के घुंघरू' और 'आधा कोस' नामक कहानी संग्रहों में नारी मन की व्यथा को ही उजागर किया है। इसके अलावा नासिरा शर्मा, अर्चना वर्मा, क्षमा शर्मा, दूर्वा सहाय, जया जदवानी आदि हिंदी की चर्चित महिला कलाकार हैं जिनकी कहानियों में स्त्री संवेदना के विविध चित्र अंकित हुए हैं।

बोध प्रश्न-3

(क) हिंदी कहानी में दलित कहानीकारों के रचनात्मक हस्तक्षेप पर प्रकाश डालिए।
(उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

(ख) समकालीन कहानी की प्रमुख प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।
(उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

(ग) हिंदी की महिला कहानीकारों की रचनात्मकता पर प्रकाश डालिए।
(उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

13.7 सारांश

- स्वातंत्र्योत्तर भारत में हिंदी कहानी के परिदृश्य पर कई कथा-आंदोलनों ने रूपाकार लिया परंतु इनमें से मुख्य रूप से 'नई कहानी' तथा साठोत्तरी दौर की 'अकहानी' ने इस विधा में व्यापक तौर पर हस्तक्षेप किया तथा कहानी में नई अभिव्यक्तियों को संभव किया।
- 'नई कहानी' में एक साथ कई स्वर सक्रिय थे। इस दौर में नए भावबोध तथा वस्तु स्थिति के साथ शहरी, ग्रामीण, आँचलिक तथा स्त्री जीवन की कहानियाँ लिखी गई।
- 'अकहानी' में व्यक्ति की हताशा, निराशा, कुंठा, अजनबीयत तथा त्रास को प्रमुखता से व्यक्त किया गया है।
- समकालीन कहानी में अन्य विषयों के साथ ही सांप्रदायिकता तथा भूमंडलीकरण के बाद बनी नई परिस्थितियों पर प्रमुखता से लिखा गया है।
- पिछले वर्षों में दलित कथाकारों ने हिंदी कहानी में महत्वपूर्ण हस्तक्षेप किया है। उन्होंने अपने समाज की वंचनाओं को प्रमुखता से कहानी में पिरोया है।

- हिंदी कहानी में महिला कथाकारों की एक समृद्ध परंपरा रही है। उन्होंने अपनी कहानी के माध्यम से पितृसत्ता का प्रतिरोध किया है।

13.8 उपयोगी पुस्तकें

- *हिंदी कहानी का विकास* – मधुरेश, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद
- *हिंदी कहानी का इतिहास : (द्वितीय भाग)* – गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

(क) (i) – (ख)
(ii) – (घ)
(iii) – (ग)
(iv) – (घ)
(v) – (क)

(ख) देखें – भाग 13.2

(ग) देखें – भाग 13.2

बोध प्रश्न-2

(क) (i) – काशीनाथ सिंह
(ii) – दूधनाथ सिंह
(iii) – रवीन्द्र कालिया
(iv) – महेंद्र भल्ला
(v) – ज्ञानरंजन

(ख) देखें – भाग 13.3

बोध प्रश्न-3

(क) देखें – भाग 13.5

(ख) देखें – भाग 13.4

(ग) देखें – भाग 13.6

इकाई 14 हिंदी उपन्यास का विकास-I

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 हिंदी उपन्यास का उद्भव और आरंभिक विकास

14.3 प्रेमचंद युग

14.3.1 प्रेमचंद का आविर्भाव और हिंदी उपन्यास का विकास

14.3.2 प्रेमचंदयुगीन अन्य उपन्यासकार

14.4 प्रेमचंदोत्तर उपन्यास

14.4.1 स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व का उपन्यास लेखन

14.5 सारांश

14.6 उपयोगी पुस्तकें

14.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

14.0 उद्देश्य

इस खंड की प्रथम दो इकाइयों में आप हिंदी कहानी के विकास के संदर्भ में जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। यह इस खंड की तीसरी इकाई है जिसमें आपको हिंदी उपन्यास के आरंभ से लेकर स्वतंत्रता पूर्व तक के विकास की जानकारी दी जा रही है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- हिंदी उपन्यास के विकास की पृष्ठभूमि के बारे में जानकारी दे पाएँगे;
- प्रेमचंद युग से पूर्व लिखे गए उपन्यासों के बारे में बता पाएँगे;
- प्रेमचंद के हिंदी उपन्यास में योगदान को विश्लेषित कर पाएँगे;
- प्रेमचंद युग के अन्य उपन्यासकारों के अवदान की जानकारी दे पाएँगे और
- प्रेमचंद युग के बाद तथा देश की स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व लिखे गए उपन्यासों के बारे में बता पाएँगे।

14.1 प्रस्तावना

विभिन्न कारकों और परिस्थितियों के फलस्वरूप हिंदी में उपन्यास का जन्म उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ। इसकी प्रमुख प्रेरणा शक्ति थी– नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन। कहानी कहने के ढंग, संरचना और शिल्प में 'नयापन' था तथा कथावस्तु और यथार्थ नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन से उत्पन्न भावबोध को अभिव्यक्त कर रहा था। दुनिया में 'नॉवेल' का जन्म सर्वप्रथम जापान में हुआ और इसकी रचना लेडी मुरासाकी नामक महिला उपन्यासकार ने की। उनका लिखा उपन्यास 'टेल्स ऑफ गेंजी' दुनिया का पहला उपन्यास है जो 1000 ई. में सामने आया। इसके बाद यूरोपीय देशों में कथा को नए तरीके से और नए

भावबोध (सच के करीब) से लिखने का सिलसिला शुरू हुआ। भारत में उन्नीसवीं शताब्दी में कई 'उपन्यास' लिखे गए। भारत में 'उपन्यास' पद का प्रयोग पहली बार भूदेव मुखर्जी ने विशेष प्रकार की गद्य कथा के लिए किया और उपन्यास 'नॉवेल' का पर्याय बन गया। आगे हिंदी उपन्यास के विकास की क्रमबद्ध जानकारी दी जा रही है।

14.2 हिंदी उपन्यास का उद्‌भव और आरंभिक विकास

हिंदी में 1860 ई. के पूर्व कथा साहित्य अत्यंत अविकसित अवस्था में था। पर इस दशक के अंतिम वर्ष की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना **पं. गौरीदत्त रचित** 'देवरानी-जेठानी की कहानी' (1870 ई.) का प्रकाशन है। यह हिंदी की पहली मौलिक कथा पुस्तक है जिसमें एक यथार्थवादी कथा संसार की रचना की गई है। हिंदी उपन्यास का प्रारंभ यहीं से माना जाना चाहिए। पं. गौरीदत्त ने अपनी पुस्तक की भूमिका में लिखा है, ''स्त्रियों को पढ़ने-पढ़ाने के लिए जितनी पुस्तकें लिखी गई हैं सब अपने अपने ढंग और रीति से अच्छी हैं परंतु मैंने इस कहानी को नये रंग-ढंग से लिखा है।'' कथा का यही 'नया रंग ढंग' उपन्यास को जन्म देता है।

बीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में 'देवरानी-जेठानी की कहानी' के ढंग की दो और पुस्तकें लिखी गयीं– **मुंशी ईश्वरी प्रसाद और मुंशी कल्याण राय** द्वारा लिखित 'वामा शिक्षक' (1872 ई.) तथा **पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी** लिखित 'भाग्यवती' (1877 ई.)। 'भाग्यवती' की रचना भी हिंदू स्त्रियों को गार्हस्थ धर्म का उपदेश देने के निमित्त ही हुई थी। यह भी मूलतः उपदेशाख्यान कोटि की ही रचना है। पर इसमें तत्कालीन हिंदू समाज की अनेक कुरीतियों– यथा बाल-विवाह, विवाहोत्सव संबंधित अंधविश्वास, श्राद्धकर्म संबंधी प्रपंच और अपव्यय आदि का यथार्थवादी अंकन है। इस प्रकार नारी का आदर्श रूप प्रस्तुत करना और उपदेश देना मुख्य लक्ष्य होते हुए भी इसमें यथार्थ चित्रण का आग्रह है जो इसे 'उपन्यास' के निकट ला देता है।

पं. गौरीदत्त और पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी दोनों में से किसी ने भी अपनी रचना को 'उपन्यास' की संज्ञा नहीं दी। यद्यपि 'उपन्यास' पद का प्रथम प्रयोग 1875 ई. में ही 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' में प्रकाशित एक कहानी के लिए हो चुका था और **पं. बालकृष्ण भट्ट** का 'रहस्य कथा उपन्यास' भी 'हिंदी प्रदीप' के नवम्बर 1879 ई. अंक से प्रकाशित होना शुरू हो चुका था पर 'उपन्यास' नाम से लिखित हिंदी की पहली पुस्तक **राधाकृष्ण दास** कृत 'निस्सहाय हिंदू है। इसकी रचना 1881 ई. में हुई थी (यद्यपि इसका प्रकाशन 1890 ई. में हुआ था)। 'निस्सहाय हिंदू' में तत्कालीन जीवन का विश्वसनीय चित्र प्रस्तुत किया गया है। इसका मुख्य प्रतिपाद्य गोवध समस्या है। कथा की आश्चर्यजनक नवीनता इस बात में है कि इसमें एक मुसलमान पात्र गोवध निवारण के लिए अपनी जान दे देता है। हिंदू पात्र और मुसलमान पात्र के बीच सच्ची दोस्ती का चित्रण करके कथाकार ने हिंदू-मुस्लिम एकता को भी प्रतीकित करने का प्रयास किया है।

उन्नीसवीं सदी के नवें दशक में 'निस्सहाय हिंदू' के अतिरिक्त प्रकाशित होने वाली प्रमुख रचनाएँ – **लाला श्रीनिवास दास** कृत 'परीक्षा गुरू' (1882 ई.), ठाकुर जगन्मोहन सिंह कृत 'श्यामा स्वप्न' (1885 ई.), **पं. बालकृष्ण भट्ट** कृत 'नूतन ब्रह्मचारी' (1886 ई.) तथा **किशोरीलाल गोस्वामी** कृत 'प्रणयिनी परिणय' (1887 ई.), 'त्रिवेणी व सौभाग्य श्रेणी' (1888 ई.) और 'स्वर्गीय कुसुम व कुसुम कुमारी' (रचना काल-1877 ई., प्रकाशन वर्ष-1901 ई.) हैं।

उपदेशाख्यान की श्रेणी की रचना होने के बावजूद 'परीक्षा गुरु' में कतिपय औपन्यासिक विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। इसकी कथावस्तु और पात्र तत्कालीन भारतीय समाज के अंग

हैं। कथाशिल्प की दृष्टि से भी 'परीक्षा गुरु' में नवीनता है। इसमें नाटकीय पद्धति पर घटनाओं का चित्रण किया गया है। इसकी भाषा भी सरल, दैनिक बोलचाल की और निराडम्बर है। 'परीक्षा गुरू' की तरह पं. बालकृष्ण भट्ट कृत 'नूतन ब्रह्मचारी' भी मूलतः उपदेशाख्यान है जिसमें संस्कृत गद्यकाव्यों की भाषा शैली भी मिल गयी है।

हिंदी उपन्यास की विकास यात्रा की एक उल्लेखनीय रचना ठाकुर जगन्मोहन सिंह लिखित 'श्यामा स्वप्न' (रचना काल-1885, प्रकाशन वर्ष-1888) है जिसे उसके आवरण पृष्ठ पर हिंदी में 'एक कल्पना' और अंग्रेज़ी में 'एन ओरिज़िनल नॉवेल' कहा गया है।

हिंदी उपन्यास की विकास-यात्रा में उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम तथा बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशकों का महत्वपूर्ण योगदान है। सन् 1890 ई. के पूर्व हिंदी में उपन्यासोन्मुख गद्य कथाओं की रचना छिटपुट रूप में ही हुई। 1890 ई. के बाद हिंदी में तीन कथाकार लगभग एक साथ उभरे जिन्होंने अपने विपुल कथा-साहित्य से हिंदी उपन्यास को अलग-अलग ढंग से समृद्ध बनाया। ये कथाकार हैं– देवकीनंदन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी और गोपाल राम गहमरी।

देवकीनंदन खत्री मूलतः उर्दू दास्तानों की परंपरा के कथाकार हैं जिनके कथा-संसार की मूल प्रेरणा संभवतः 'तिलस्में होशरूबा' है। उन्होंने 'चंद्रकांता' (1891 ई.), चंद्रकांता संतति (1894-1905 ई.) और 'भूतनाथ' (1907-1913 ई.) शीर्षक से लगातार चलने वाली तिलिस्म-ऐय्यारी प्रधान कथाओं की शृंखला के रूप में एक बृहत् और जटिल कथा संसार का निर्माण कर न केवल तत्कालीन हिंदी पाठकों को वरन् उर्दू पाठकों को भी आकृष्ट किया। प्रसिद्ध है कि इन कथाओं को पढ़ने के लिए अनेक उर्दूदाँ पाठकों ने हिंदी पढ़ना सीखा। निस्संदेह हिंदी पाठक वर्ग के निर्माण में देवकीनंदन खत्री की इन पुस्तकों का महत्वपूर्ण योगदान है।

इस काल के दूसरे महत्वपूर्ण कथा लेखक **किशोरीलाल गोस्वामी** हैं जिनकी अधिकांश कथा पुस्तकें, स्वयं लेखक के साक्ष्य पर, लिखी तो गयीं 1890-1900 ई. की अवधि में ही, पर प्रकाशित 1901-1915 ई. की अवधि में हुईं। गोस्वामी जी के दो उपन्यास 'प्रणयिनी परिणय' (रचना काल- 1887 ई.) और 'त्रिवेणी व सौभाग्य श्रेणी' (रचनाकाल – 1888 ई.) 1890 ई. में प्रकाशित हो चुके थे, पर शेष उपन्यास जिनकी संख्या इन्हें छोड़कर 27 है, 1900 ई. के बाद ही प्रकाशित हुए। गोस्वामी जी हिंदी में ऐतिहासिक रोमांस के प्रवर्तक हैं। इन्होंने कुल 12 ऐतिहासिक रोमांस लिखे– 'हृदयहारिणी व आदर्शरमणी' (1890 ई.), 'भातृस्नेह' (1902 ई.), 'तारा व क्षत्रकुल कमलिनी' (1902 ई.),'लवंगलता व आदर्शबाला' (1904 ई.), 'गुलबहार व आदर्श' 'कनककुसुम व मस्तानी' (1904 ई.), 'हीराबाई व बेहयायी का बोरका' (1904 ई.), 'मल्लिका देवी व बंग सरोजिनी' (1905 ई.), 'लखनऊ की कब्र व शाही महलसरा'' (1906 ई.), 'सोना और सुंगध व पन्नाबाई' (1909 ई.), 'लाल कुँवर व शाही रंगमहल' (1909 ई.), 'नूरजहाँ' (1909 ई.) और 'गुप्त गोदना' (1922-23 ई.) – जिनमें उन्होंने भारतीय इतिहास के मुस्लिम काल को आधार बनाकर अपने विशिष्ट दृष्टिकोण से हिंदू गौरव का चित्रण किया।

तीसरे कथाकार **गोपाल राम गहमरी** हैं, जिनकी 1900-1917 ई. के बीच 107 मौलिक या मौलिकप्राय अपराध कथाएँ प्रकाशित हुईं।

1891 ई. से लगभग 1915 ई. तक हिंदी में ऐय्यारी-तिलिस्म प्रधान, अपराध प्रधान, ऐतिहासिक और सामान्य रोमांसों का बोलबाला रहा। खत्री, गोस्वामी और गोपाल राम गहमरी इस काल के हिंदी पाठकों पर इस प्रकार छाये रहे कि इनकी धारा के अन्य लेखक भी 'रेन शैडो' में पड़े रहे। पर हिंदी उपन्यास की यथार्थवादी धारा, जिसका आरंभ 'देवरानी-जेठानी की कहानी' से हुआ, इस 'रेन शैडो' में भी विकसित होती रही। इन यथार्थवादी उपन्यास लेखकों में भुवनेश्वर मिश्र, ब्रजनंदन सहाय और मेहता लज्जाराम शर्मा प्रमुख हैं। **भुवनेश्वर मिश्र**

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के ही नहीं, प्रेमचंद पूर्व युग के सर्वश्रेष्ठ यथार्थवादी उपन्यासकार हैं। इन्होंने केवल दो उपन्यासों की रचना की थी– 'घराऊ घटना' (प्र. का. 1901 ई.) और 'बलवंत भूमिहार'। 'घराऊ घटना' समकालीन रुचिधारा से प्रभावित होने पर भी अपने युग की विशिष्ट कृति है। यह हिंदी का प्रथम यथार्थवादी उपन्यास है जिसमें मध्यवर्ग के एक सामान्य गृहस्थ के दैनिक जीवन का, उसके सूक्ष्म ब्योरों के साथ यथार्थ और विश्वसनीय चित्र प्रस्तुत किया गया है। भुवनेश्वर मिश्र का दूसरा उपन्यास, 'बलवंत भूमिहार' तत्कालीन जीवन के यथार्थ अंकन, विश्वसनीय चरित्र-चित्रण, अपेक्षाकृत जटिल वस्तु-विन्यास और यथार्थ को वहन करने वाली सक्षम भाषा के कारण इसे प्रेमचंद-पूर्व युग का सर्वोत्कृष्ट उपन्यास माना जा सकता है। उपन्यास की भूमिका में उपन्यासकार ने लिखा है, 'बिहार प्रदेश के उत्तरीय भाग के जमीन्दारों की संख्या में अधिक लोग भूमिहार जाति के पाये जाते हैं। इसकी कथा आज से 30 वर्ष पूर्व की सी दी गयी है पर जैसा चरित्र भूमिहारों का इसमें लिखा गया है प्रायः वैसा ही चरित्र में दोषारोपण नहीं किया है और न उसकी उत्तमता प्रगट करने की चेष्टा की है–पर जैसा मैंने उसे पाया है, इस पुस्तक में लिख दिया है।' इस कथन में जो यथार्थवादी स्वर है वह उल्लेखनीय है। 1900-1917 ई. के बीच के अवधि के हिंदी के अन्य प्रमुख उपन्यासकार हैं – ब्रजनन्दन सहाय और मेहता लज्जाराम शर्मा। ब्रजनन्दन सहाय ने 'राजेन्द्र मालती' (1897 ई.), 'अदभुत् प्रायश्चित्त' (1901 ई.), 'सौन्दर्योपासक' (1911 ई.), 'राधाकान्त' (1912 ई.) और 'अरण्य बाला' (1915 ई.) नामक उपन्यास तथा 'लाल-चीन' (1916 ई.) नामक ऐतिहासिक उपन्यास की रचना की थी। मेहता लज्जाराम शर्मा ने 1899 से लेकर 1915 ई0 तक सामाजिक उपन्यास लिखे, उनके प्रमुख उपन्यास हैं – 'धूर्त्तरसिक लाल' (1899 ई.), 'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी' (1899 ई.), 'हिंदू गृहस्थ' (1902 ई.), 'आदर्श दम्पति' (1902 ई.), 'सुशीला विधवा' (1907 ई.), 'बिगड़े का सुधार अथवा सती सुखदेवी' (1907 ई.), 'विपत्ति की कसौटी' (1909 ई.) तथा 'आदर्श हिंदू' (1914-15 ई.)।

बोध प्रश्न-1

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प का चुनाव कीजिए।

(i) हिंदी में लिखित पहली मौलिक कथा पुस्तक कौन सी है?

(क) भाग्यवती (ख) देवरानी जेठानी की कहानी (ग) परीक्षा गुरू (घ) नूतन ब्रह्मचारी

(ii) 'निस्सहाय हिंदू' नामक उपन्यास के लेखक कौन हैं?

(क) पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी (ख) बालकृष्ण भट्ट (ग) राधाकृष्ण दास
(घ) भारतेंदु हरिश्चंद्र

(iii) भारत में उपन्यास पद का पहली बार प्रयोग किसने किया?

(क) प्रेमचंद (ख) पं. गौरीदत्त (ग) मुंशी कल्याण राय (घ) भूदेव मुखर्जी

(iv) 'भाग्यवती' की विषय-वस्तु क्या है?

(क) गार्हस्थ धर्म (ख) स्वराज (ग) किसान समस्या (घ) ऋण समस्या

(v) 'देवरानी जेठानी की कहानी' का प्रकाशन वर्ष क्या है?

(क) 1860 ई. (ख) 1870 ई. (ग) 1877 ई. (घ) 1882 ई.

(ख) हिंदी उपन्यास के प्रारंभिक विकास पर एक टिप्पणी लिखिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

14.3 प्रेमचंद युग

14.3.1 प्रेमचंद का आविर्भाव और हिंदी उपन्यास का विकास

हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचंद को युग प्रवर्तक माना जाता है। प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यास को नई ऊर्जा और दिशा प्रदान की। उनके आगमन के बाद हिंदी में तिलिस्म-ऐय्यारीपूर्ण तथा जासूसी उपन्यासों का दौर खत्म हो गया। प्रेमचंद से पूर्व हिंदी उपन्यासों का बड़ा हिस्सा स्त्री को गार्हस्थ-दाम्पत्य की शिक्षा देने के उद्देश्य से लिखा गया, पर प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में स्त्री के संघर्षशील जीवन का चित्रण किया। उन्होंने प्रमुख रूप से ग्रामीण जीवन को केंद्र में रखकर भारत के नवनिर्माण का मुद्दा अपने विभिन्न उपन्यासों में उठाया और उसमें समाज के सभी वर्गों को शामिल किया। प्रेमचंद जिस दौर में कथा लेखन में सक्रिय थे वह दौर भारत में स्वतंत्रता आंदोलन का दौर था। प्रेमचंद के उपन्यासों में नवजागरण की चेतना और राष्ट्रीय आंदोलन की संघर्षशीलता की प्रतिध्वनि लगातार दिखाई देती है। उस दौर की प्रमुख समस्याओं को प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों का विषय बनाया। प्रेमचंद के उपन्यासों की विषय-वस्तु का दायरा काफी विस्तृत है। स्त्री, दलित तथा किसान को उन्होंने पहली बार उनकी आशा-आकांक्षा, वंचना, संघर्ष और पराजय के साथ उपस्थित किया। राष्ट्र और उसके नागरिक का व्यापक यथार्थपूर्ण चित्रण पहली बार प्रेमचंद के उपन्यासों में ही दिखाई देता है।

प्रेमचंद का हिंदी में प्रथम प्रकाशित उपन्यास 'सेवासदन' है। हिंदी में इसका प्रकाशन 1918 ई. में हुआ था। हालाँकि पहले यह 'बाज़ारे हुस्न' नाम से उर्दू में लिखा गया था। इसका उर्दू रूप हिंदी रूपांतरण के बाद प्रकाशित हुआ। 'सेवासदन' से पूर्व प्रेमचंद उर्दू में उपन्यास लिखा करते थे। उनके उर्दू के प्रमुख उपन्यास हैं– 'असरारे मआविद उर्फ देवस्थान रहस्य' (1903-05 ई.), 'हमखुर्मा व हमसवाब' (1906 ई.), 'किसना' (1908 ई.) तथा 'जलवा ए ईसार' (1912 ई.)।

हिंदी में 'सेवासदन' (1918 ई.) के बाद 1922 ई. में 'प्रेमाश्रम' और 1925 ई. में 'रंगभूमि' का प्रकाशन हुआ। ये उपन्यास भी मूलतः उर्दू में क्रमशः 'नाकाम गोशए-आफियत' और 'चौगाने हस्ती' नाम से लिखे गए थे। मूल रूप से हिंदी में लिखा गया उनका प्रथम उपन्यास 'कायाकल्प' था जिसका प्रकाशन 1926 ई. में हुआ था। 'कायाकल्प' के बाद प्रेमचंद ने 1927 ई. में 'निर्मला', 1931 ई. में 'गबन', 1932 ई. में 'कर्मभूमि' और 1936 ई. में 'गोदान' की रचना की। उनकी मृत्यु के बाद उनका अधूरा उपन्यास 'मंगलसूत्र' 1948 ई. में प्रकाशित हुआ।

नवजागरण की चेतना की उपस्थिति प्रेमचंद द्वारा उर्दू में लिखित उपन्यासों से ही दिखाई देने लगती है। 'असरारे मआविद उर्फ देवस्थान रहस्य' में उन्होंने मंदिरों और तीर्थ स्थानों में फैले भ्रष्टाचार और पाखंड को विषय बनाया है। 'हमखुर्मा व हमसवाब' में उन्होंने विधवा विवाह का समर्थन किया। हिंदी में प्रकाशित 'सेवासदन' में वेश्या जीवन से जुड़ी समस्याओं को उठाया गया है। पुरुष सत्ता के बरक्स मजबूत स्त्री पात्र को यहाँ पेश किया गया है। इस उपन्यास में स्त्री द्वारा वेश्यावृत्ति की राह चुनने का कारण सामाजिक-पारिवारिक व्यवस्था है। 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचंद ने अंग्रेज़ी राज में किसानों और जमींदारों के संबंध का चित्रण किया है। इसमें अंग्रेज़ी शासन-व्यवस्था में किसानों के शोषण का यथार्थपूर्ण चित्रण किया गया है। 'रंगभूमि' में प्रेमचंद ने सूरदास के माध्यम से गांधीवादी तरीके से औपनिवेशिक सत्ता से संघर्ष की कथा कही है। इस उपन्यास का नायक सूरदास भिखारी है, संसाधनहीन है पर औपनिवेशिक सत्ता के आगे घुटने नहीं टेकता। प्रेमचंद के इन उपन्यासों में नवजागरण की चेतना के साथ ही आदर्शवाद की भी उपस्थिति है। गोपाल राय के अनुसार, ''महात्मा गांधी सत्याग्रह, हृदय परिवर्तन, आश्रमों की स्थापना आदि के द्वारा तत्कालीन समस्याओं का समाधान ढूँढ रहे थे। यदि इन सबका असर प्रेमचंद के उपन्यासों पर है तो इसे अप्रत्याशित नहीं माना जा सकता।''

'कायाकल्प', 'निर्मला', 'ग़बन', 'कर्मभूमि' और 'गोदान' में प्रेमचंद पराधीन राष्ट्र के विभिन्न यथार्थ को व्यापक आयामों और जटिलताओं के साथ प्रस्तुत करते हैं। 'कायाकल्प' और 'गोदान' में किसानों की निर्धनता और शोषण का चित्रण हुआ है। 'निर्मला' के केंद्र में अनमेल विवाह और दहेज की समस्या है। 'ग़बन' में स्त्री के आभूषण-प्रेम और मध्यवर्गीय युवक की प्रदर्शनप्रियता के परिप्रेक्ष्य में उसके पतन की कथा है पर अंत में यह कथा राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भों से जुड़ जाती है। 'गोदान' में अंग्रेज़ी भू-व्यवस्था में हर तरह से प्रताड़ित किसानों की कथा है जो अपनी 'मरजाद' की रक्षा के लिए किसान से मजदूर बन जाता है और अंततः अतृप्त आकांक्षाओं के साथ उसकी मृत्यु हो जाती है।

उपर्युक्त चर्चा से प्रेमचंद के विभिन्न उपन्यासों का परिचय आपको प्राप्त हुआ। दरअसल उनका हर उपन्यास तत्कालीन राष्ट्र और समाज के अनेकानेक संदर्भों से जुड़ा है। प्रेमचंद अगर जमींदार और अंग्रेज़ों के शोषण का चित्रण करते हैं तो किसानों की धर्मभीरूता को भी दर्शाते हैं। किसानों की धर्मभीरूता उनकी दुर्दशा को और बढ़ा देती है। 'गबन' का एक पात्र देवीदीन खटिक स्वतंत्रता आंदोलन में आ रहे विरोधाभासों को भी उजागर करता है। 'कायाकल्प' में प्रेमचंद ने सांप्रदायिकता के पीछे किस प्रकार दूषित राजनीति का हाथ होता है, इस यथार्थ को दर्शाया है। 'रंगभूमि' में पूँजीपति द्वारा गाँव की ज़मीन को हथियाने के प्रयास का प्रतिरोध व्यक्त हुआ है। प्रेमचंद ने पहली बार तत्कालीन मध्यवर्ग के ढुलमुलपन, नैतिक विरोधाभास, आर्थिक संघर्ष आदि को विश्वसनीयता के साथ चित्रित किया।

इस प्रकार प्रेमचंद अपने उपन्यासों के जरिए न केवल पराधीन भारत के यथार्थ से हमें परिचित कराते हैं बल्कि आजाद भारत का भावी स्वरूप भी ढूँढते नज़र आते हैं। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में आम लोगों की समझ में आनेवाली भाषा को माध्यम बनाया और अपने समय का

यथार्थवादी चित्रण किया। उन्होंने अपने उपन्यासों के जरिए राष्ट्र और समाज के निर्माण के लिए कुछ आदर्श भी प्रस्तुत किए। उनके ये आदर्श मूल रूप से मानवतावाद और समाज सुधार से प्रेरित थे, जिस पर गांधी के विचारों का अपेक्षित प्रभाव भी दिखाई पड़ता है। जिस प्रकार राजनीति के क्षेत्र में महात्मा गांधी देश की जनता को एकजुट कर भारत को गुलामी से मुक्त कराने का प्रयास कर रहे थे, उसी प्रकार प्रेमचंद अपने उपन्यासों के जरिए जनता में जागृति पैदा कर रहे थे।

प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यास में जिस भावबोध का बीज बोया वह उनके समय में ही काफी पुष्पित-पल्लवित हुआ। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में संभावनाओं के वे सारे द्वार खोल दिए जो हिंदी उपन्यास को कई दिशाओं में जाने के लिए प्रवृत्त करते हैं। आपने पढ़ा कि प्रेमचंद ने भारतीय समाज के लगभग हर पहलू पर कलम चलाई—सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और यहाँ तक कि मनोवैज्ञानिक भी। समाज में हाशिए पर खड़े लोगों को अपने उपन्यास के केंद्र में रखा जो अभी तक अछूते थे। उन्होंने स्त्रियों और दलितों के जीवन का चित्रण किया। किसानों की दुरावस्था का चित्रण किया और अपने पात्रों के माध्यम से मनुष्य के मन में उठने वाली उथल-पुथल का भी अंकन किया। प्रेमचंद के समय में ही बहुत सारे उपन्यासकारों ने अपने-अपने ढंग से इन मुद्दों को नई दिशा दी और उपन्यास को समृद्ध विधा के रूप में आगे बढ़ाया। हम आगे प्रेमचंद के समय में और बाद में लिखने वाले उपन्यासकारों और उपन्यास की चर्चा करने जा रहे हैं।

14.3.2 प्रेमचंदयुगीन अन्य उपन्यासकार

हिंदी उपन्यास विधा में प्रेमचंद का रचना काल 1918 ई. से 1936 ई. तक है। यह पूरा दौर उपन्यास लेखन की दृष्टि से विविधताओं से भरा हुआ है। प्रेमचंद के अतिरिक्त इस दौर में जो अन्य उपन्यासकार सक्रिय थे उनमें शिवपूजन सहाय, विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, जैनेंद्र, भगवती चरण वर्मा, वृंदावनलाल वर्मा, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', चतुरसेन शास्त्री आदि प्रमुख हैं।

इस अवधि में **शिवपूजन सहाय** का एकमात्र उपन्यास 'देहाती दुनिया' 1926 ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में बिहार के भोजपुर अंचल के ग्रामीण जीवन को वहाँ की भाषा, बोली-बानी, गीत, मुहावरा आदि के माध्यम से पेश किया गया है। उपन्यास लेखन की आंचलिक शैली का पहला प्रयोग इसी उपन्यास में हुआ था।

विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' ने प्रेमचंद की शैली का अनुसरण किया। उनके दो उपन्यास – 'माँ' तथा 'भिखारिणी' उल्लेखनीय हैं। इन दोनों ही उपन्यासों का प्रकाशन 1929 ई. में हुआ। इन उपन्यासों में तत्कालीन पारिवारिक और सामाजिक जीवन का अंकन सहज भाषा में यथार्थवादी रूप में हुआ है। 'माँ' में एक आदर्श माँ के स्नेह और त्याग को प्रस्तुत किया गया है। 'भिखारिणी' में समाज में मौजूद जातिगत वर्जना की विद्रूपता का चित्रण किया गया है। इन दोनों उपन्यासों के अतिरिक्त आगे चलकर 1945 ई. में इनका 'संघर्ष' नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ।

कविता, कहानी और नाटक की तरह उपन्यास विधा में भी **जयशंकर प्रसाद** का महत्वपूर्ण योगदान है। उनके तीनों उपन्यास– 'कंकाल' (1930 ई.), 'तितली' (1934 ई.) तथा 'इरावती' (1936 ई.) इसी अवधि में लिखे गए। इन उपन्यासों में प्रसाद का यथार्थवादी दृष्टिकोण सामने आता है। 'कंकाल' में प्रसाद ने प्रेमचंद की आदर्शोन्मुख यथार्थवादी शैली से अलग शुद्ध यथार्थवाद को अपनाया। प्रसाद ने इस उपन्यास में धार्मिक बाह्याचारों की आलोचना की है। इस उपन्यास में धर्म के नाम पर चलने वाले आडंबरों और दुराचारों का चित्रण किया गया

है। साथ ही जारज संतानों के चित्रण के जरिए समाज के दलित, शोषित और पीड़ित वर्ग का चित्रण हुआ है। 'तितली' में किसानों-मजदूरों के शोषण तथा निम्नवर्गीय समाज की दयनीय स्थिति का यथार्थ चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में यूरोपीय और भारतीय मूल्य का टकराव भी है। 'इरावती' प्रसाद की अधूरी कृति है। इसकी कथावस्तु ऐतिहासिक है।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के "उपन्यास मूलतः स्वच्छंदतावादी भाव-भूमि पर लिखे गए हैं, किंतु उनमें प्रगतिशील विचारधारा के सूत्र भी बिखरे हुए हैं।" (डॉ. रामचंद्र तिवारी, हिंदी उपन्यास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ.–42) प्रेमचंद युग में निराला के चार उपन्यास – 'अप्सरा' (1931 ई.), 'अलका' (1933 ई.), 'प्रभावती' (1936 ई.) तथा 'निरूपमा' (1936 ई.) प्रकाशित हुए। 'अप्सरा' वेश्या जीवन पर केंद्रित उपन्यास है। 'अलका' में अवध क्षेत्र के किसानों की दयनीय स्थिति तथा किसानों के विद्रोह का अंकन किया गया है। उपन्यास में नारी का चित्रण आदर्श रूप में किया गया है। 'प्रभावती' स्वयं निराला के शब्दों में ऐतिहासिक रोमांस है जिसमें सामंती समाज के युद्ध, प्रेम, विवाह, षड्यंत्र का वर्णन है। 'निरूपमा' यथार्थपरक उपन्यास है जिसमें ग्रामीण जीवन में मौजूद रूढ़ियों, संकीर्णताओं और जमींदारों के द्वारा किए जाने वाले शोषण तथा बेकारी की समस्या का चित्रण किया गया है।

वृंदावनलाल वर्मा प्रेमचंद युग के एक महत्वपूर्ण उपन्यासकार हैं। इन्होंने बुंदेलखंड की पृष्ठभूमि पर मुख्यतः ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की है। गोपाल राय के अनुसार, ''वर्मा जी के पूर्व हिंदी में, सही अर्थों में, ऐतिहासिक उपन्यास का अभाव था। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम और बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में किशोरीलाल गोस्वामी, गंगा प्रसाद गुप्त, जयराम दास गुप्त आदि ने इतिहास पर आधारित उपन्यास लिखे थे पर उन्हें ऐतिहासिक उपन्यास न कहकर ऐतिहासिक रोमांस कहना ही संगत है।'' (हिंदी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, पृ.162) प्रेमचंद युग में लिखे गए उनके प्रमुख उपन्यास हैं– 'गढ़कुंडार' (1930 ई.) और 'विराटा की पद्मिनी' (1936 ई.)। 'गढ़कुंडार' में कुंडारों और बुंदेलों के रंजिश और संघर्ष का वर्णन है जिसमें अंततः कुंडार पर बुंदेलों की सत्ता स्थापित होती है। 'विराटा की पद्मिनी' में कुमुद के सौंदर्य की ख्याति, कुंजर से उसका प्रेम, अलीमर्दाना की विराटा पर चढ़ाई, युद्ध में कुंजर की मौत तथा कुमुद का प्राणत्याग की कथा कही गई है। इसके साथ ही यह भी दर्शाया गया है कि किस प्रकार उत्तराधिकार के संघर्ष के कारण बुंदेलखंड का पतन हुआ। दोनों ही उपन्यासों में काफी गहनता से बुंदेलखंड के सांस्कृतिक जीवन का वर्णन किया गया है। इन उपन्यासों के अतिरिक्त वृंदावनलाल वर्मा का प्रसिद्ध उपन्यास 'झाँसी की रानी' 1946 ई. में प्रकाशित हुआ।

जैनेंद्र कुमार इस दौर के सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपन्यासकारों में शुमार किए जाते हैं। इन्होंने हिंदी उपन्यास को एक नई दिशा दी। प्रेम, मानसिक ऊहापोह, सामाजिक-नैतिक अंतर्द्वंद्व के ताने-बाने से उन्होंने बिल्कुल अलग तरह की कथा का सृजन किया। इस अवधि में उनके द्वारा लिखे गए प्रमुख उपन्यास हैं– 'परख' (1929 ई.) और 'सुनीता' (1934 ई.)। 'परख' में बाल विधवा कट्टो सत्यधन से प्रेम करती है, पर विवाह नहीं हो पाता। कट्टो को सत्यधन का मित्र बिहारी अपना लेता है, पर दोनों देह के धरातल पर पति-पत्नी की तरह नहीं रहने का निर्णय लेते हैं। सामाजिक नैतिकता और व्यक्ति के मनोविज्ञान के अंतर्द्वंद्व का इस उपन्यास में सफल चित्रण हुआ है। सुनीता में दाम्पत्य से बाहर स्त्री के प्रेम का पहली बार सशक्त चित्रण हुआ है। जैनेंद्र के उपन्यास विवेच्य अवधि के बाद भी प्रकाशित होते रहें। उनके अन्य उपन्यास हैं – 'त्यागपत्र' (1937 ई.), 'कल्याणी' (1939 ई.), 'सुखदा' (1952 ई.), 'विवर्त' (1952 ई.), 'व्यतीत' (1953 ई.), 'जयवर्द्धन' (1956 ई.), 'मुक्तिबोध' (1965 ई.), 'अनंतर' (1968 ई.), 'अनाम स्वामी' (1974 ई.) तथा 'दशार्क' (1983 ई.)।

प्रेमचंद युग में **भगवतीचरण वर्मा** के तीन उपन्यास – 'पतन' (1928 ई.), 'चित्रलेखा' (1934 ई.) और 'तीन वर्ष' (1936 ई.) प्रकाशित हुए। 'चित्रलेखा' भगवतीचरण वर्मा का अत्यंत लोकप्रिय उपन्यास है। इस उपन्यास में भोग, योग, पाप, पुण्य जैसे दार्शनिक प्रश्न को प्रेमकथा के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। 'तीन वर्ष' के केंद्र में यह प्रश्न है कि प्रेम की परिणिति विवाह में आवश्यक है अथवा नहीं।

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' प्रेमचंद युग के एक विशिष्ट उपन्यासकार हैं। इनका यथार्थ चित्रण प्रेमचंद और प्रसाद– दोनों से अलग है। इन्होंने यथार्थ को पूरी तरह अनावृत करके पेश किया। इनके उपन्यासों में समाज की कुरीतियों, गलीज और विडंबनाओं का साहसपूर्ण तथा खुला चित्रण किया गया है। इस दौर में प्रकाशित इनके उपन्यास हैं– 'दिल्ली का दलाल' (1927 ई.), 'चंद हसीनों के खतूत' (1927 ई.), 'बुधुआ की बेटी' (1928 ई.) और 'शराबी' (1930 ई.)। 'दिल्ली का दलाल' में लड़कियों के खरीद-फरोख़्त का पर्दाफाश किया गया है। 'चंद हसीनों के खतूत' में हिंदू और मुसलमान युवक-युवतियों के प्रेम और विवाह का चित्रण है, साथ ही, दोनों समुदाय के लोगों की अमानवीयता का चित्रण भी किया गया है। 'बुधुआ की बेटी' में त्रासद दलित जीवन तथा दलितों के प्रतिरोध का चित्रण किया गया है। विवेच्य अवधि के पश्चात प्रकाशित उग्र जी के प्रमुख उपन्यास हैं– 'सरकार तुम्हारी आँखों में' (1937 ई.), 'जी जी जी' (1939 ई.) तथा 'फागुन के दिन' (1960 ई.)।

चतुरसेन शास्त्री का पहला उपन्यास 'हृदय की परख' प्रेमचंद युग के प्रारंभ (1918 ई.) से एक वर्ष पूर्व 1917 ई. में प्रकाशित हो चुका था। इस उपन्यास में विवाह पूर्व के अवैध संतान की समस्या को उठाया गया है। प्रेमचंद युग की समय-सीमा में प्रकाशित उनके प्रमुख उपन्यास हैं–'हृदय की प्यास' (1927 ई.), 'अमर अभिलाषा' (1933 ई.) और 'आत्मदाह' (1934 ई.)। इन उपन्यासों में पुरुषों का दैहिक आकर्षण, स्त्रियों की स्वाधीनता की चेतना, विधवा विवाह आदि का चित्रण है। इन उपन्यासों के अतिरिक्त बाद के वर्षों में प्रकाशित चतुरसेन शास्त्री के अन्य प्रमुख उपन्यास हैं– 'वैशाली की नगरवधू' (1941 ई.), 'आलमगीर' (1954 ई.), 'वयं रक्षामः' (1955 ई.), 'सोमनाथ' (1955 ई.) आदि।

श्रीयुत इंद्र बसावड़ा इस युग के एक महत्वपूर्ण उपन्यासकार हैं। इन्होंने 1935 ई. में दलित उपन्यास – 'घर की राह' का लेखन किया। 'घर की राह' की खासियत यह है कि इसमें एक दलित बच्चे के नज़रिए से पूरे समाज का अवलोकन किया गया है। उपन्यास के आरंभ से अंत तक वह घर की राह ढूँढता रहता है, पर उसे अपना 'घर' नहीं मिलता। इस लिहाज से यह उपन्यास विशिष्ट है। इस उपन्यास की प्रस्तावना प्रेमचंद ने लिखी थी।

ऋषभचरण जैन प्रेमचंद युग के एक प्रमुख उपन्यासकार हैं। इन्होंने भारतीय समाज की विद्रुपताओं को अपने उपन्यास लेखन का विषय बनाया। समाज की आपराधिक गतिविधियों तथा वेश्याओं के जीवन का चित्रण इनके उपन्यासों में प्रमुखता से हुआ है। इनके प्रमुख उपन्यास हैं– 'दिल्ली का व्यभिचार', (1928 ई.), 'वेश्यापुत्र' (1929 ई.), 'मास्टर साहब (1929 ई.), 'सत्याग्रह' (1930 ई.), 'रहस्यमयी' (1931 ई.), 'दिल्ली का कलंक' (1936 ई.) आदि।

इलाचंद्र जोशी के 'घृणामयी' उपन्यास का प्रकाशन इस अवधि में (सन् 1929 ई.) में हुआ, लेकिन उनके महत्वपूर्ण उपन्यासों का प्रकाशन बाद के वर्षों में हुआ। इनकी चर्चा आगे की जाएगी।

इस युग में अनेक महिलाओं ने भी उपन्यास लेखन किया। 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' पुस्तक में गोपाल राय द्वारा दी गयी सूचना के अनुसार प्रेमचंद युग में सोलह लेखिकाओं ने उपन्यास लिखे। (देखें – हिंदी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, पृ.–164) इन लेखिकाओं

ने समाज में स्त्रियों की दशा-दिशा पर विभिन्न कोणों से लिखा। इन लेखिकाओं में उषा देवी मित्र ('वचन का मोल', 1936 ई.) आगे के वर्षों में भी उपन्यास लेखन में सक्रिय बनी रहीं।

उपन्यास रचना की दृष्टि से प्रेमचंद युग विविधताओं से भरा हुआ है। प्रेमचंद ने तो इसे आम जन-जीवन से जोड़ा ही; प्रसाद, निराला जैसे स्वच्छंदतावादी कवियों ने भी इस विधा को सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने यथार्थ को अनावृत ढंग से पेश किया। इन्हें 'प्राकृतवादी' उपन्यासकार भी कहा जाता है। जैनेंद्र ने उपन्यास लेखन को नया आयाम दिया। व्यक्ति के मनोविज्ञान और सामाजिक मर्यादाओं के दबाव के अंतर्द्वंद्व के ताने-बाने से इन्होंने खास अपनी शैली विकसित की। जैनेंद्र का मुख्य विषय प्रेम और दाम्पत्य है। शिवपूजन सहाय ने पहली बार आंचलिक उपन्यास का लेखन किया। वृंदावनलाल वर्मा ने ऐतिहासिक उपन्यास लेखन की शुरुआत की। श्रीयुत इंद्र बसावड़ा ने प्रथम दलित उपन्यास लिखा। उग्र और ऋषभचरण जैन ने सामाजिक विद्रुपताओं और व्यक्ति के असामान्य प्रवृत्तियों को प्रमुखता से अपने उपन्यास लेखन का विषय बनाया। अंग्रेज़ों और जमींदारों द्वारा किसानों का शोषण, धार्मिक संकीर्णता और विद्रूपता, व्यक्ति के मानसिक अंतर्द्वंद्व, समाज में स्त्रियों की स्थिति, वेश्याओं का जीवन, क्षेत्र विशेष का ऐतिहासिक-सांस्कृतिक जीवन, दलित समाज की स्थिति जैसे अनेकानेक विषयों पर इस दौर में उपन्यास लेखन किया गया।

बोध प्रश्न-2

(क) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक-एक पंक्ति में दीजिए।

(i) प्रेमचंद का उपन्यास 'बाजारे हुस्न' हिंदी में किस नाम से प्रकाशित हुआ ?

.....

(ii) मूल रूप से हिंदी में लिखा गया प्रेमचंद का प्रथम उपन्यास कौन-सा है ?

.....

(iii) अनमेल विवाह और दहेज की समस्या प्रेमचंद के किस उपन्यास की केंद्रीय विषय-वस्तु है?

.....

(iv) 'गबन' का मुख्य विषय क्या है?

.....

(v) 'रंगभूमि' का प्रकाशन-वर्ष क्या है?

.....

(ख) निम्नलिखित उपन्यासकारों के रचनात्मक अवदान पर टिप्पणी लिखिए।
(अपना उत्तर पाँच-पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

(i) जयशंकर प्रसाद

.....

.....

.....

.....

.....

(ii) जैनेंद्र कुमार

.....

.....

.....

.....

.....

(iii) पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'

.....

.....

.....

.....

.....

(iv) वृंदावनलाल वर्मा

.....

.....

.....

.....

.....

(ग) प्रेमचंद के हिंदी में प्रकाशित उपन्यासों के विषय-वस्तु पर प्रकाश डालिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

(घ) 'प्रेमचंद युग का उपन्यास-लेखन विविधताओं से भरा हुआ है।' इस कथन की समीक्षा दस पंक्तियों में कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

14.4 प्रेमचंदोत्तर उपन्यास

1936 ई. में प्रेमचंद की मृत्यु के साथ हिंदी उपन्यास लेखन में प्रेमचंद युग का अंत हो गया पर प्रेमचंद तथा उनके समकालीनों ने उपन्यास लेखन में संभावनाओं के जो नए-नए द्वार खोले थे प्रेमचंदोत्तर दौर में उसका बहुआयामी विकास हुआ। प्रेमचंद युग में उपन्यास लेखन की शुरुआत करने वाले कई उपन्यासकारों के अनेक महत्वपूर्ण उपन्यास इस अवधि में प्रकाशित हुए, साथ ही अनेक नये लेखक इसमें शामिल हुए। प्रेमचंद के बाद से आज तक की इस लंबी काल-अवधि में इस विधा को अनेकानेक महत्वपूर्ण उपन्यास लेखकों ने अपनी रचनात्मकता से समृद्ध किया है। अध्ययन की सुविधा के लिए इस अवधि को दो भागों– 'स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व का उपन्यास लेखन' तथा 'स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद का उपन्यास लेखन' में बाँटा जा रहा है। यहाँ स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व के उपन्यास लेखन की जानकारी दी जा रही है। इसके बाद के दौर में लिखे गए उपन्यासों की जानकारी अगली इकाई में दी जाएगी।

14.4.1 स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व का उपन्यास लेखन

इस अवधि में प्रेमचंद युग से सक्रिय जैनेंद्र कुमार, इलाचंद्र जोशी, उषा देवी मित्र, वृंदावनलाल वर्मा आदि के महत्वपूर्ण उपन्यास प्रकाशित हुए। ऐसे उपन्यास लेखक जिन्होंने इस अवधि में उपन्यास लेखन की शुरुआत की उनमें कुछ महत्वपूर्ण नाम हैं– राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, अज्ञेय, यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' आदि।

इस दौर में **जैनेंद्र कुमार** के दो उपन्यास – 'त्यागपत्र' (1937 ई.) और 'कल्याणी' (1939 ई.) का प्रकाशन हुआ। 'त्यागपत्र' की गणना हिंदी के सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपन्यासों में की जाती है। इस उपन्यास में भारतीय समाज में नारी की स्थिति को चित्रित किया गया है। स्त्री के प्रेम का अधिकार, जड़ सामाजिक मानदंडों का प्रतिरोध, सामाजिक अस्वीकृति तथा आत्मदमन का जटिल अंतःसंघर्ष इस उपन्यास में अभिव्यक्त हुआ है। 'कल्याणी' में भी पुरुषसत्ता द्वारा स्त्री के दमन और शोषण के चित्र हैं।

इस दौर में एकाधिक उपन्यास लिखने वाली लेखिका **उषा देवी मित्र** हैं। इस दौर में उनके 'पिया' (1937 ई.), 'मुस्कान' (1939 ई.), 'पंथचारी' (1940 ई.) आदि उपन्यासों का प्रकाशन हुआ।

इलाचंद्र जोशी अपने उपन्यास लेखन की शुरुआत प्रेमचंद युग में ही कर चुके थे। 1929 ई. में प्रकाशित 'घृणामयी' में वे प्रेम की असफलता से उत्पन्न कुंठा के प्लॉट पर मनोवैज्ञानिक उपन्यास लिख चुके थे। विवेच्य अवधि में प्रकाशित उनके उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक चित्रण की शैली और स्पष्टता से सामने आई। इलाचंद्र जोशी ने प्रमुख मनोवैज्ञानिक चिंतकों– फ्रायड, एडलर, युंग के सिद्धांत के अनुरूप उपन्यास लिखा। इस दौर में प्रकाशित उनके प्रमुख उपन्यास हैं– 'संन्यासी' (1941 ई.), 'पर्दे की रानी' (1941 ई.), 'प्रेम और छाया' (1946 ई.) तथा 'निर्वासित' (1946 ई.)।

इस दौर के प्रथम वर्ष–1937 ई. में **राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह** का 'राम रहीम' के साथ हिंदी उपन्यास में पदार्पण हुआ। 'राम रहीम' में उन्होंने धार्मिक समरसता का आह्वान किया है। इनके उपन्यासों का स्वरूप आदर्शवादी है। इनके उपन्यासों में स्त्री-जीवन की समस्याओं का अंकन सहानुभूतिपूर्ण ढंग से हुआ है। इस क्रम में वे भारतीय समाज की परंपरागत नारी विषयक रूढ़ियों-वर्जनाओं को भी प्रश्नांकित करते हैं। इस अवधि में प्रकाशित इनके अन्य उपन्यास हैं– 'सावनी समाँ' (1938 ई.), 'पुरुष और नारी' (1938 ई.), 'टूटा तारा' (1941 ई.) और 'सूरदास' (1943 ई.)। आगे चलकर इनके 'संस्कार' (1951 ई.), 'पूरब और पश्चिम' (1951 ई.), 'चुम्बन और चाँटा' (1957 ई.) आदि उपन्यास प्रकाशित हुए।

हिंदी के सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपन्यासों में शुमार किए गए 'शेखर एक जीवनी' के लेखक **अज्ञेय** का उपन्यास विधा में आगमन 1940 ई. में हुआ। इस वर्ष 'शेखर एक जीवनी' का पहला भाग प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास का दूसरा भाग 1944 ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में अज्ञेय ने बौद्धिक, रूढ़िभंजक और विद्रोही व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक और संवेदनात्मक जीवन-यात्रा का चित्रण किया है। 'शेखर एक जीवनी' के अतिरिक्त अज्ञेय के दो और उपन्यास–'नदी के द्वीप' (1951 ई.) तथा 'अपने-अपने अजनबी' (1961 ई.) हैं।

यशपाल मार्क्सवादी वर्गीय दृष्टि के अनुरूप उपन्यास लिखने वाले पहले उपन्यासकार थे। ''... यशपाल प्राचीन मान्यताओं एवं रूढ़ियों के विरोधी हैं और नये संदर्भ के अनुकूल नवीन विचारधारा के समर्थक हैं। यह नवीन विचारधारा मार्क्सवादी जीवन दर्शन है।'' (रामचंद्र तिवारी, हिंदी उपन्यास, पृ.–71)। 'दादा कामरेड' (1941 ई.) यशपाल का पहला

उपन्यास है। 'दादा कामरेड' में सशस्त्र क्रांति द्वारा भारत को अंग्रेज़ों से मुक्त कराने के प्रयास में लगे क्रांतिकारियों की कथा और उनके अनेक अंतर्विरोधों को अंकित किया गया है। इस अवधि में प्रकाशित यशपाल के अन्य उपन्यास हैं–'देशद्रोही' (1943 ई.), 'दिव्या' (1945 ई.) तथा 'पार्टी कामरेड' (1946 ई.)। 'दिव्या' की पृष्ठभूमि ऐतिहासिक है। इस उपन्यास में समाज में स्त्री की दशा को चित्रित किया गया है। वैसे यशपाल का सबसे प्रसिद्ध उपन्यास 'झूठा-सच' है। इस उपन्यास के बारे में अगली इकाई में जानकारी दी जाएगी।

ऐतिहासिक उपन्यास लिखने वाले हिंदी के लेखकों में **राहुल सांकृत्यायन** एक प्रमुख नाम हैं। 1944 ई. में उनके दो उपन्यास– 'सिंह सेनापति' और 'जय यौधेय' प्रकाशित हुए। 'सिंह सेनापति' में पाँच सौ ई.पू. की तक्षशिला और वैशाली को कथाभूमि बनाया गया है। यह एक आदर्शोन्मुख उपन्यास है जिसमें निजी संपत्ति रहित, सामंत रहित, शोषण रहित समाज का चित्रण किया गया है। 'जय यौधेय' में चित्रित समाज का समय ईसा की चौथी शताब्दी है। इस उपन्यास में भी सुंदर समाज की परिकल्पना है जिसमें अर्थगत ऊँच-नीच के बावजूद परस्परता और मानवता की भावना मौजूद है। दोनों ही उपन्यासों में समाजवादी व्यवस्था की सकारात्मकता को उद्घाटित किया गया है।

हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का प्रकाशन 1946 ई. में हुआ। इस उपन्यास में भी कथा का संदर्भ ऐतिहासिक है। उपन्यास के केंद्र में बाणभट्ट है जो हषवर्धन का दरबारी था। लेकिन उपन्यास में इतिहास की घटनात्मकता का उपयोग कम किया गया है। कल्पना और जनश्रुति के इस्तेमाल से तत्युगीन सांस्कृतिक चित्र उपस्थित किया गया है। समाज में नारी की स्थिति तथा राष्ट्र के समक्ष मौजूद संकट की अभिव्यक्ति उपन्यास का महत्वपूर्ण पक्ष है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अन्य उपन्यास हैं– 'चारु चंद्रलेख' (1963 ई.), 'पुनर्नवा' (1943 ई.) तथा 'अनामदास का पोथा' (1976 ई.)।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' का 'चढ़ती धूप' 1945 ई. में प्रकाशित हुआ। उनके अन्य उपन्यास हैं – 'उल्का' (1947 ई.) तथा 'नई इमारत' (1947 ई.)। 'चढ़ती धूप' 1932-1937 की अवधि में राष्ट्र के पटल पर चल रहे राजनीतिक गतिविधियों पर आधारित है। उपन्यास में उस दौर में कांग्रेस तथा कम्युनिस्ट पार्टी के बीच उभरे द्वंद्व का चित्रण प्रमुखता से हुआ है। 'उल्का' स्त्री सशक्तिकरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास में स्त्री के अधिकारों की मुखर वकालत की गई है।

बोध प्रश्न-3

(क) निम्नलिखित उपन्यासों के प्रकाशन-वर्ष तथा उनके लेखकों के नाम बताइए।

उपन्यास	प्रकाशन-वर्ष	लेखक
(i) परीक्षा गुरु	.....	.....
(ii) चंद्रकांता	.....	.....
(iii) गोदान	.....	.....
(iv) देहाती दुनिया	.....	.....
(v) त्यागपत्र	.....	.....
(vi) घर की राह	.....	.....

(vii) राम रहीम ....

(viii) शेखर एक जीवनी (प्रथम भाग) ....

(ix) बाणभट्ट की आत्मकथा ....

(x) दादा कामरेड ....

(ख) प्रेमचंदोत्तर दौर के पश्चात तथा स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व उपन्यास विधा के विकास पर टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

14.5 सारांश

- हिंदी उपन्यास के उत्थान और प्रारंभिक विकास की पृष्ठभूमि में मुख्य रूप से नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन से उत्पन्न चेतना है।
- हिंदी की पहली मौलिक कथा पुस्तक 1870 ई. में पं. गौरीदत्त द्वारा लिखित 'देवरानी जेठानी की कहानी' है।
- हिंदी के आरंभिक उपन्यासकारों ने मुख्य रूप से उपदेशाख्यानपरक आख्यान अथवा ऐतिहासिक रोमांस की रचना की। इसी दौर में दो उपन्यासकारों – देवकीनंदन खत्री तथा गोपालराम गहमरी ने अलग-अलग भावभूमि के उपन्यास की रचना की।
- देवकीनंदन खत्री ने तिलिस्म-ऐय्यारी प्रधान उपन्यास की रचना की तो गोपाल राम गहमरी ने अपराध कथाएँ लिखीं।
- 1918 ई. से 1936 ई. तक के काल को हिंदी उपन्यास में प्रेमचंद युग के नाम से जाना जाता है। प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यास को भारतीय जीवन-यथार्थ से जोड़ा। उन्होंने किसान, स्त्री, धार्मिक संकीर्णता, स्वराज आदि विषयों को अपने उपन्यास में पिरोया।

- प्रेमचंद युग में हिंदी उपन्यास का बहुआयामी विकास हुआ। इस दौर में जयशंकर प्रसाद, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', जैनेंद्र, भगवती चरण वर्मा आदि ने इस विधा में नई-नई राहों का निर्माण किया। यह प्रयास प्रेमचंदोत्तर दौर में भी जारी रहा।
- प्रेमचंदोत्तर दौर में हिंदी उपन्यास को नई दिशा देने वालों में इलचंद्र जोशी, अज्ञेय, यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि प्रमुख हैं।

14.6 उपयोगी पुस्तकें

- *हिंदी उपन्यास* – रामचंद्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
- *हिंदी उपन्यास का इतिहास* – गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

14.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

(क) (i) – ख

(ii) – ग

(iii) – घ

(iv) – क

(v) – ख

(ख) देखें – भाग 14.2

बोध प्रश्न-2

(क) (i) 'बाजारे हुस्न' हिंदी में 'सेवासदन' के नाम से प्रकाशित हुआ।

(ii) मूल रूप से हिंदी में लिखा गया प्रेमचंद का प्रथम उपन्यास 'कायाकल्प' है।

(iii) प्रेमचंद के 'निर्मला' नामक उपन्यास में अनमेल विवाह और दहेज की समस्या केंद्र में है।

(iv) स्त्री का गहनों के प्रति आकर्षण।

(v) 'रंगभूमि' का प्रकाशन वर्ष 1925 ई. है।

(ख) देखें – भाग 14.3.2

(ग) देखें – भाग 14.3.1

(घ) देखें – भाग 14.3

बोध प्रश्न-3

(क) (i) – 1882 ई., लाला श्री निवासदास

(ii) – 1891 ई., देवकीनंदन खत्री

(iii) – 1936 ई., प्रेमचंद

(iv) – 1926 ई., शिवपूजन सहाय

(v) – 1937 ई., जैनेंद्र

(vi) – 1935 ई., श्रीयुत इंद्र बसावड़ा

(vii) – 1937 ई., राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह

(viii) – 1940 ई., अज्ञेय

(ix) – 1946 ई., हजारीप्रसाद द्विवेदी

(x) – 1941 ई., यशपाल

(ख) देखें – भाग 14.4.1

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 15 हिंदी उपन्यास का विकास-II

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास

15.3 हिंदी उपन्यास की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

- 15.3.1 ऐतिहासिक-पौराणिक उपन्यास
- 15.3.2 मनोवैज्ञानिक उपन्यास
- 15.3.3 मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण
- 15.3.4 ग्रामीण और आंचलिक जीवन का चित्रण
- 15.3.5 स्त्री संदर्भ
- 15.3.6 दलित संदर्भ

15.4 सारांश

15.5 उपयोगी पुस्तकें

15.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

15.0 उद्देश्य

पिछली इकाई में आप हिंदी उपन्यास के प्रारंभ से लेकर स्वतंत्रता-प्राप्ति के दौर तक के विकास के बारे में जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। इस इकाई में स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास के विकास तथा हिंदी उपन्यास की प्रमुख प्रवृत्तियों की जानकारी दी जा रही है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- स्वातंत्र्योत्तर भारत के प्रमुख उपन्यासकारों और उनकी रचनाओं के बारे में जानकारी दे पाएँगे;
- इस दौर में लिखे गए कतिपय महत्वपूर्ण उपन्यासों की विषय-वस्तु के बारे में बता पाएँगे तथा
- हिंदी उपन्यासों की प्रमुख प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाल पाएँगे।

15.1 प्रस्तावना

देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से लेकर अब तक के लंबे दौर में हिंदी उपन्यास ने विकास की अनेकानेक मंजिलें तय की हैं। इस दौर में कुछ ऐसे उपन्यासकार भी सक्रिय थे जिनका लेखन विवेच्य दौर से पहले शुरू हो चुका था, परंतु इस दौर में उनकी ऐसी महत्वपूर्ण रचनाएँ आईं जिनसे उनकी पहचान बनी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के दौर में कथावस्तु और शिल्प, दोनों ही दृष्टियों से हिंदी उपन्यास का तेज़ी से विस्तार हुआ। आज़ादी के बाद निर्मित नवीन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों में नई चुनौतियाँ सामने आईं। इसने भारतीय समाज को व्यापक रूप

से प्रभावित किया। बदली हुई परिस्थिति में हिंदी उपन्यास का भी बहुआयामी विकास हुआ। इस दौर से पहले प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उपन्यासों की केंद्रीय चेतना नवजागरण की चेतना थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के दौर में व्यक्ति, समाज अथवा वर्ग का जीवन-संघर्ष प्रमुख हो गया। आजादी के बाद से अब तक के इस लंबे दौर में जीवन संघर्ष के अनेकानेक रूप सामने आए हैं। हिंदी उपन्यास में यह पूर्णरूपेण प्रतिबिंबित हुआ।

15.2 स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के दौर में सक्रिय हुए उपन्यासकारों की एक लंबी फहरिस्त है। आगे हम उनमें से कुछ प्रमुख उपन्यासकारों की चर्चा करेंगे। इससे पूर्व उन कुछ प्रमुख उपन्यासकारों की चर्चा की जा रही है जो पहले से सक्रिय थे लेकिन उनकी कुछ महत्वपूर्ण कृतियों (उपन्यास) का प्रकाशन विवेच्य दौर में हुआ। चतुरसेन शास्त्री के प्रसिद्ध उपन्यास 'वैशाली की नगरवधू' का प्रकाशन 1949 ई. में हुआ। इस उपन्यास में चतुरसेन शास्त्री ने अम्बपाली के बहाने तत्कालीन गणराज्यों की टकराहट और सांस्कृतिक जीवन का चित्रण किया है। इलाचंद्र जोशी का महत्वपूर्ण उपन्यास 'जहाज का पंछी' 1955 ई. में प्रकाशित हुआ। देश के विभाजन पर केंद्रित तथा हिंदी के सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपन्यासों में चिह्नित यशपाल के 'झूठा सच' के प्रथम खंड ('वतन और देश') का प्रकाशन 1958 ई. में तथा इसके दूसरे खंड ('देश का भविष्य') का प्रकाशन 1960 ई. में हुआ। आजादी के साथ ही देश विभाजन की त्रासदी का वस्तुनिष्ठ चित्रण 'झूठा सच' में हुआ है। इसके दूसरे खंड में आजादी के बाद के भारतीय सामाजिक और राजनैतिक परिदृश्य का चित्रण किया गया है। प्रेम-त्रिकोण पर आधारित अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' का प्रकाशन 1951 ई. में तथा अस्तित्ववादी दर्शन पर आधारित 'अपने-अपने अजनबी' का प्रकाशन 1961 ई. में हुआ। उपेंद्रनाथ अश्क 1940 ई. में 'सितारों का खेल' उपन्यास लिख चुके थे, लेकिन उनकी प्रसिद्धि 1946 ई. में प्रकाशित 'गिरती दीवारें' के कारण है। इस उपन्यास में मध्यवर्गीय कुंठा, नैतिकता और संबंधों में औचित्य-अनौचित्य को नये तरीके से व्यक्त किया गया है। उनके अन्य उपन्यास हैं- 'गर्म राख' (1952 ई.)', 'शहर में घूमता आईना' (1962 ई.), 'निमिषा' (1980 ई.) आदि।

रांगेय राघव के प्रथम उपन्यास 'घरौंदा' का प्रकाशन 1946 ई. में हुआ। बंगाल के अकाल पर केंद्रित 'विषाद मठ' का प्रकाशन भी इसी वर्ष हुआ। 1948 ई. में उनका 'मुर्दों का टीला' प्रकाशित हुआ। यह मोहनजोदड़ो की सभ्यता की पृष्ठभूमि में लिखा गया है। इसमें द्रविड़ सभ्यता के सकारात्मक पक्ष का चित्रण किया गया है। रांगेय राघव के 'कब तक पुकारूँ' शीर्षक उपन्यास का प्रकाशन 1957 ई. में हुआ। इस उपन्यास में दलित और कबीलाई समाज के संघर्षपूर्ण जीवन का मार्मिक अंकन किया गया है। रांगेय राघव के अन्य महत्वपूर्ण उपन्यास हैं – 'प्रतिदान' (1950 ई.), 'हुजूर' (1951 ई.), 'अंधेरे में जुगनू' (1953 ई.), 'पक्षी और आकाश' (1957 ई.), 'लोई का ताना' (1954 ई.), 'लखिमा की आँखें' (1957 ई.), 'राई और पर्वत' (1958 ई.), 'आखिरी आवाज़' (1962 ई.)। 'लखिमा की आँखें' विद्यापति के जीवन से संबंधित है, जबकि 'लोई का ताना' कबीर के जीवन से। भैरवप्रसाद गुप्त मार्क्सवादी दृष्टिकोण से लिखने वाले प्रमुख उपन्यासकार हैं। इनका पहला उपन्यास 'शोले' 1946 ई. में प्रकाशित हुआ। देश की आज़ादी के पश्चात प्रकाशित इनके प्रमुख उपन्यास हैं – 'मशाल' (1948 ई.), 'गंगा मैया' (1952 ई.), 'जंजीरें और नया आदमी' (1955 ई.), 'सत्ती मैया का चौरा' (1959 ई.), 'धरती' (1962 ई.) आदि। इनका अंतिम उपन्यास 'छोटी-सी शुरुआत' इनके मरणोपरांत 1997 ई. में प्रकाशित हुआ। 'शोले' में मजदूर आंदोलन का चित्रण है। 'मशाल' में द्वितीय विश्वयुद्धोत्तर काल में ब्रिटिश भारत के यथार्थ तथा प्रगतिशील राजनीति के उदय का चित्रण है। 'सत्ती मैया का चौरा' भैरव प्रसाद गुप्त का सर्वाधिक चर्चित उपन्यास है। इसमें किसानों

की वर्गीय चेतना और संघर्ष का चित्रण किया गया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सक्रिय हुए उपन्यास लेखकों में **नागार्जुन** प्रारंभिक महत्वपूर्ण उपन्यासकार हैं। नागार्जुन ने बिहार के मिथिला क्षेत्र के जीवन-संघर्ष को अपने उपन्यासों की विषय-वस्तु बनाया। नागार्जुन के उपन्यासों में मिथिला क्षेत्र के कृषकों का संघर्षमय जीवन, स्त्रियों की व्यथा तथा हाशिए के लोगों के संघर्ष का चित्रण मिलता है। नागार्जुन का प्रथम उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' का प्रकाशन 1948 ई. में हुआ। 'रतिनाथ की चाची' में कृषक संघर्ष तथा परिवार और समाज में स्त्री की व्यथा और विडंबना का चित्रण है। 1952 ई. में प्रकाशित प्रसिद्ध उपन्यास 'बलचनमा' में नागार्जुन ने निम्नवर्गीय समाज और कृषक समाज के शोषण, कांग्रेस की राजनीति में जमींदारों का प्रवेश और उनकी स्वार्थपूर्ण गतिविधियों तथा निम्नवर्गीय समाज में राजनीतिक चेतना के विकास का चित्रण किया है। नागार्जुन के अन्य उपन्यास हैं – 'बाबा बटेसरनाथ' (1954 ई.), 'वरुण के बेटे' (1957 ई.), 'दुखमोचन' (1957 ई.), 'उग्रतारा' (1963 ई.), 'हीरक जयंती' (1963 ई.), 'जमनिया के बाबा' (1968 ई.) आदि।

सन् 1947 ई. में 'महाकाल' से उपन्यास लेखन की शुरुआत करने वाले **अमृतलाल नागर** स्वातंत्र्योत्तर भारत के सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपन्यास लेखकों में है। गोपाल राय के अनुसार, ''नागर जी का कथा संसार बहुत व्यापक और वैविध्यपूर्ण है। सच पूछे तो नागर जी इस दृष्टि से प्रेमचंदोत्तर युग के सबसे बड़े उपन्यासकार हैं।'' (हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृ. 221)। नागर जी का 'बूँद और समुद्र' 1956 ई. में प्रकाशित हुआ। बड़े कलेवर के इस उपन्यास में मध्यवर्गीय सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन का बहुआयामी चित्रण किया गया है। 'अमृत और विष' (1966 ई.) में मध्यवर्गीय जीवन और राजनीतिक मूल्यहीनता का चित्रण किया गया है। 'नाच्यौ बहुत गोपाल' (1978 ई.) दलित जीवन से संबंधित महत्वपूर्ण हिंदी उपन्यासों में से एक है। 'मानस का हंस' (1972 ई.) तुलसीदास के जीवन और सृजन को आधार बनाकर लिखा गया महत्वपूर्ण उपन्यास है, जबकि 'खंजन नयन' (1918 ई.) सूरदास के जीवन पर आधारित उपन्यास है। **अमृतलाल नागर** के अन्य महत्वपूर्ण उपन्यास हैं – 'सुहाग के नूपुर' (1960 ई.), 'सात घूँघट वाला मुखड़ा' (1968 ई.), 'एकदा नैमिषारण्ये' (1972 ई.), 'बिखरे तिनके' (1982 ई.), 'अग्निगर्भा' (1983 ई.), 'करवट' (1985 ई.), 'पीढ़ियाँ' (1990 ई.) आदि।

धर्मवीर भारती ने शहरी मध्यवर्गीय और निम्न-मध्यवर्गीय जीवन में प्रेम को आधार बनाकर दो उपन्यास- 'गुनाहों का देवता' (1949 ई.) और 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' (1952 ई.) लिखे। 'गुनाहों का देवता' हिंदी के सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यासों में है। इसमें किशोर प्रेम का भावुकतापूर्ण चित्रण किया गया है। इसका सामाजिक-आर्थिक परिप्रेक्ष्य क्षीण है। 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' में जो कथा कही गयी है उसका निश्चित सामाजिक परिप्रेक्ष्य बनता है। यहाँ हर बार प्रेम आर्थिक बंधन और सामाजिक रूढ़ियों के कारण दम तोड़ देता है।

विष्णु प्रभाकर का उपन्यास लेखन में आगमन 1951 ई. में 'ढलती रात' उपन्यास से हुआ। यही उपन्यास पुनः 1955 ई. में 'निशिकांत' नाम से प्रकाशित हुआ। इनके अन्य उपन्यास हैं – 'तट के बंधन' (1955 ई.), 'स्वप्नमयी' (1956 ई.), 'दर्पण का व्यक्ति' (1968 ई.), 'कोई तो' (1980 ई.) तथा 'अर्द्धनारीश्वर' (1992 ई.) है। विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों में नारी जीवन की समस्याओं को विविध रूपों में चित्रित किया गया है। 'अर्द्धनारीश्वर' विष्णु प्रभाकर का चर्चित उपन्यास है जिसमें बलात्कार पीड़ित स्त्रियों की यातनापूर्ण जीवन का चित्रण किया गया है।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' हिंदी उपन्यास को नई दिशा देने वाले सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपन्यासकारों में से एक हैं। रेणु को हिंदी का सर्वश्रेष्ठ आंचलिक उपन्यासकार माना गया है। रेणु से पूर्व

तथा उनके बाद अनेक लेखकों ने आंचलिक विशिष्टताओं को अपने उपन्यासों में पिरोया, लेकिन आंचलिकता का सबसे निखरा हुआ रूप रेणु में ही दिखाई देता है। उन्होंने बिहार के पूर्णिया क्षेत्र की बोली-बानी, गीत-संगीत, मान्यताएँ-रूढ़ियाँ, व्यवहार प्रणाली के नियोजन से ऐसा कथा-शिल्प निर्मित किया जो हिंदी उपन्यास की दृष्टि से सर्वथा अनूठा है। रेणु के प्रथम उपन्यास 'मैला आँचल' का प्रकाशन 1954 ई. में हुआ। इस उपन्यास में रेणु ने मेरीगंज नामक गाँव के पिछड़ापन, जड़ता, जातिगत विद्वेष और वर्जनाओं के साथ उस समय राजनीति में आ रहे मूल्यगत ह्रास को चित्रित किया है। रेणु के अन्य उपन्यास हैं – 'परती परिकथा' (1957 ई.), 'दीर्घतपा' (1970 ई.), 'जुलूस' (1965 ई.), 'कितने चौराहें' (1966 ई.) और 'पल्टूबाबू रोड' (1979 ई.)।

उदयशंकर भट्ट एक अन्य महत्वपूर्ण आंचलिक उपन्यासकार हैं। 1956 ई. में प्रकाशित 'सागर, लहरें और मनुष्य' इनका चर्चित उपन्यास है। इस उपन्यास में उदयशंकर भट्ट ने मुंबई के बरसोवा में बसे मछुआरों के जीवन को चित्रित किया है।

नरेश मेहता के प्रथम उपन्यास 'डूबते मस्तूल' का प्रकाशन 1954 ई. में हुआ। 'डूबते मस्तूल' में आधुनिक जीवन के संदर्भ में नारी की समस्याओं को चित्रित किया गया है। इनके अन्य उपन्यास हैं – 'यह पथ बंधु था' (1964 ई.), 'धूमकेतू-एक श्रुति' (1962 ई.), 'दो एकांत' (1964 ई.), 'नदी यशस्वी है' (1967 ई.) आदि। 'यह पथ बंधु था' नरेश मेहता का सर्वाधिक चर्चित उपन्यास है। उपन्यास में कथावस्तु का समय आज़ादी से पूर्व का है। इसमें एक आदर्शवादी स्वाभिमानी युवा की कहानी है जो उस समय चल रहे आंदोलनों से निराश होता है। रामदरश मिश्र के अनुसार, ''यह उपन्यास अनुभवों का उपन्यास है- मध्यवर्ग के एक ईमानदार व्यक्ति के अनुभवों का इतिहास।'' (हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा, पृ.-161)।

राजेंद्र यादव ने शहरी मध्यवर्गीय जीवन में प्रेम और दाम्पत्य के तनाव के विविध रूपों को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया है। इनका प्रथम उपन्यास 'प्रेत बोलते हैं' 1952 ई. में प्रकाशित हुआ। इसी उपन्यास का संशोधित रूप 1960 ई. में 'सारा आकाश' के नाम से प्रकाशित हुआ। 'सारा आकाश' में राजेंद्र यादव ने दाम्पत्य जीवन के तनाव को विषय बनाया है। 'उखड़े हुए लोग' (1956 ई.) में एक नेता के दोहरे और अनैतिक चरित्र को चित्रित किया गया है। राजेंद्र यादव के अन्य उपन्यास हैं- 'शह और मात' (1959 ई.), 'अनदेखे अनजान पुल' (1963 ई.) आदि। इस दौर के प्रमुख उपन्यासकारों में **कमलेश्वर** का नाम उल्लेखनीय है। कमलेश्वर का प्रथम उपन्यास 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' 1957 ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में नौटंकी पेशा में लगे लोगों तथा अपराध कर्म में लगे लोगों के जीवन का चित्रण किया गया है। 'लौटे हुए मुसाफिर' (1961 ई.) में पाकिस्तान के नाम पर छले गए मुसलमानों की विवशता का चित्रण है। कमलेश्वर का सर्वाधिक चर्चित उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' (2000 ई.) है। इस उपन्यास में धर्म, राजनीति, भौतिकता आदि का मानवता पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभाव का अंकन किया गया है। 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' (1967 ई.), 'काली आँधी' (1974 ई.), 'आगामी अतीत' (1976 ई.), सुबह-दोपहर-शाम (1982 ई.) आदि कमलेश्वर के अन्य प्रमुख उपन्यास हैं।

श्रीलाल शुक्ल का प्रथम उपन्यास 'सूनी घाटी का सूरज' का प्रकाशन 1957 ई. में हुआ। इनका प्रसिद्ध उपन्यास 'राग दरबारी' 1968 ई. में प्रकाशित हुआ। 'गोदान', 'त्यागपत्र', 'झूठा सच', 'मैला आँचल' आदि उपन्यासों की तरह 'राग दरबारी' को हिंदी के सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपन्यासों में स्थान प्राप्त है। इस उपन्यास के केंद्र में कस्बानुमा गाँव शिवपालगंज की कथा है। शिवपालगंज के को-आपरेटिव यूनियन, इंटर कॉलेज, ग्राम सभा में घटने वाली गतिविधियों के माध्यम से भारतीय ग्रामीण और कस्बाई जिंदगी में फैले भ्रष्टाचार और मूल्यहीनता की कथा

कही गयी है। यह उपन्यास ग्रामीण-कस्बाई जीवन से संबद्ध परंपरागत आदर्शवादिता और भोलेपन के मिथक को तोड़ता है। 'विश्रामपुर का संत' (1998 ई.) में ऊपर से गरिमापूर्ण नज़र आने वाले राजनीतिक व्यक्ति के पाखंड की कथा कही गयी है। श्रीलाल शुक्ल के अन्य उपन्यास हैं – 'सीमाएँ टूटती हैं' (1973 ई.), 'मकान' (1976 ई.) तथा 'पहला पड़ाव' (1987 ई.)।

आजादी के बाद के दौर में प्रचुर मात्रा में उपन्यासों का सृजन करने वालों में **शैलेश मटियानी** का नाम प्रमुख है। 1959 ई. में उनका पहला उपन्यास 'बोरीबली से बोरीबंदर' प्रकाशित हुआ। इसमें महानगर की ऊपरी चमक-दमक के अंदर की यातना भरी ज़िंदगी का चित्रण किया गया है। 'कबूतरखाना' (1960 ई.) तथा 'किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई' (1961 ई.) मुंबई के जीवन पर केंद्रित उनके अन्य उपन्यास हैं। 'हौलदार' (1961 ई.), 'चिट्ठी रसैन' (1961 ई.) 'मुख सरोवर के हंस' (1962 ई.) आदि उपन्यासों में उत्तराखंड के कुमायूँ अंचल के पहाड़ी जीवन की विविध स्थितियों का चित्रण किया गया है। उनके बाद के उपन्यासों में 'सर्पगंधा' (1979 ई.), 'आकाश कितना अनंत है' (1979 ई.), 'गोपुली गफूरन' (1981 ई.), 'बावन नदियों का संगम' (1981 ई.), 'चंद औरतों का शहर' (1992 ई.) आदि प्रमुख हैं।

रेणु और उदयशंकर भट्ट की तरह **रामदरश मिश्र** ने भी उपन्यासों में आंचलिकता को अपना आधार बनाया, खासकर 'पानी के प्राचीर' (1961 ई.) तथा 'जल टूटता हुआ' (1969 ई.) में। इन्होंने 'पानी के प्राचीर' में गोरखपुर जिले के पांडेपुरवा गाँव को केंद्र में रखकर इस क्षेत्र के अभावग्रस्त जीवन, उनके स्वप्न तथा स्पनभंग की कथा कही है। इनके अन्य उपन्यास हैं- 'अपने लोग' (1976 ई.), 'आकाश का छत' (1979 ई.), 'बिना दरवाजे का मकान' (1984 ई.), 'बीस बरस' (1996 ई.) आदि।

मोहन राकेश का पहला उपन्यास 'अंधेरे बंद कमरे' 1961 ई. में प्रकाशित हुआ। इनके अन्य दो उपन्यास - 'न आने वाला कल' (1968 ई.) तथा 'अंतराल' (1972 ई.) हैं। मोहन राकेश के उपन्यास मुख्य रूप से मध्यवर्गीय जीवन के प्रेम, दाम्पत्य, संघर्ष, टूटन, कुंठा आदि प्रवृत्तियों पर केंद्रित हैं। 'अंधेरे बंद कमरे' में ऐसा ही तनाव पत्रकार और कलाकार की जिंदगी में है।

आज़ादी के बाद हिंदी कथा साहित्य में भाषागत प्रयोग के कारण **निर्मल वर्मा** की विशिष्ट स्थिति है। उनके उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन के तनाव, कुंठा, अवसाद, विडंबना आदि तत्वों की लगातार उपस्थिति है। 1964 ई. में निर्मल वर्मा का प्रथम उपन्यास 'वे दिन' का प्रकाशन हुआ। विदेशी पृष्ठभूमि पर लिखे गए इस उपन्यास में विश्वयुद्ध के बाद के दिनों के प्राग (चेकोस्लोवाकिया) के जन-जीवन में छायी हुई हताशा, विडंबना बोध, अवसाद, आर्थिक तंगी और घुटन की कथा कही गयी है। 'एक चिथड़ा सुख' (1979 ई.) में निर्मल वर्मा ने थियेटर में काम करने वाले लोगों के माध्यम से महानगरीय संदर्भ में जटिल मानवीय संबंध, तनाव और हताशा का चित्रण किया है। 'रात का रिपोर्टर' (1979 ई.) का संदर्भ आपातकाल है। इस उपन्यास में आपातकाल के दौरान के दहशत को चित्रित करने का प्रयास किया गया है। इनके अन्य उपन्यास हैं- 'लाल टीन की छत' (1974 ई.) तथा 'अंतिम अरण्य' (2000 ई.)।

1964 ई. में **शानी** के दो उपन्यास - 'कस्तूरी' तथा 'बंद आवाज़' का प्रकाशन हुआ, लेकिन उन्हें सर्वाधिक सराहना 1965 ई. में प्रकाशित 'काला जल' से मिली। इस उपन्यास को मध्यवर्गीय मुस्लिम समाज के यथार्थ का सबसे ज्यादा प्रमाणिक चित्रण करने वाले उपन्यासों में शुमार किया गया है। इसकी कथा भूमि बस्तर क्षेत्र है तथा कथा का विस्तार आज़ादी के पूर्व से लेकर आज़ादी के बाद तक के समय में है। उपन्यास में आज़ादी के बाद भारत में रह गए मुसलमानों के प्रति बने विडंबनापूर्ण माहौल का भी संदर्भ है। शानी के अन्य उपन्यास हैं

– 'नदी और सीपियाँ' (1970 ई.) तथा 'साँप और सीढ़ी' (1983 ई.)।

राही मासूम रजा का पहला उपन्यास 'आधा गाँव' 1966 ई. में प्रकाशित हुआ। उपन्यास के केंद्र में गंगोली गाँव (जिला-गाजीपुर, उत्तर प्रदेश) के शिया मुसलमानों का जीवन है। स्वतंत्रता पूर्व से लेकर देश-विभाजन तक की विभिन्न परिस्थितियों का उनके जीवन पर पड़े प्रभाव का चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। इस उपन्यास का स्वरूप आंचलिक है। 'सीन 75' (1977 ई.) तथा 'कटरा बी आर्जू' (1978 ई.) – ये दोनों उपन्यास आपातकाल से संबंधित हैं। इनके अन्य उपन्यास हैं – 'टोपी शुक्ला' (1969 ई.), 'हिम्मत जौनपुरी' (1969 ई.), 'ओस की बूँद' (1970 ई.) तथा 'दिल एक सादा कागज़' (1973 ई.)।

गिरिराज किशोर का पहला उपन्यास 'लोग' 1966 ई. में प्रकाशित हुआ। उपन्यास में अंग्रेज़ी शासन के खत्म होने के बाद जमींदार वर्ग के अंदर उत्पन्न संशय और आशंका का चित्रण किया गया है। रामदरश मिश्र के अनुसार, ''राय साहब या ऐसे अनेक साहबों की तस्वीर हमारे उपन्यास साहित्य में मिल जाती है, लेकिन यह खास तरह की फार्मूले से बनी हुई मालूम पड़ती है। किंतु 'लोग' में राय साहब एक प्रमाणिक व्यक्ति हैं- अपने आभिजात्य में तने हुए और घुले हुए।'' (हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा, पृ. 164) 'जुगलबंदी' (1973 ई.) में ढहते हुए सामंती समाज का चित्रण किया गया है। 'परिशिष्ट' (1984 ई.) में शिक्षा संस्थानों में दलितों के उत्पीड़न का चित्रण किया गया है। गिरिराज किशोर के अन्य उपन्यास हैं- 'चिड़ियाघर' (1968 ई.), 'यात्राएँ' (1971 ई.), 'इंद्र सुनें' (1978 ई.), 'यथा प्रस्तावित' (1982 ई.), 'पहला गिरमिटिया' (1999 ई.) आदि। 'पहला गिरमिटिया' 'गाँधी जी के अफ्रीका प्रवास के दौरान किए गए आंदोलन पर आधारित है।

भीष्म साहनी का पहला उपन्यास 'झरोखे' है। इसका प्रकाशन 1967 ई. में हुआ था। इस उपन्यास में आर्यसमाजी मध्यवर्गीय परिवार की विभिन्न घटनाओं को पिरोया गया है। 1973 ई. में प्रकाशित 'तमस' भीष्म साहनी का सबसे प्रसिद्ध उपन्यास है। देश विभाजन की पृष्ठभूमि में घटने वाली अमानवीय घटनाओं का इस उपन्यास में मार्मिक चित्रण किया गया है। 1988 ई. में प्रकाशित 'मय्यादास की माड़ी' भीष्म साहनी का एक और महत्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास में पंजाब के एक परिवार को केंद्र में रखते हुए तीन पीढ़ियों के सामाजिक-राजनैतिक-सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया को रेखांकित किया गया है। भीष्म साहनी के अन्य उपन्यास हैं – 'कड़ियाँ' (1970 ई.), 'बसंती' (1980 ई.), 'कुंतो' (1993 ई.) और 'नीलू नीलिमा नीलोफर' (2000 ई.)।

शिवप्रसाद सिंह का उपन्यास 'अलग-अलग वैतरणी' ग्रामीण जीवन से संबद्ध हिंदी का एक प्रमुख उपन्यास है। यह इनका पहला उपन्यास है जिसका प्रकाशन 1967 ई. में हुआ था। इसके केंद्र में पूर्वांचल का करैता गाँव है। इस गाँव की कथा के माध्यम से स्वतंत्रता के बाद पूर्वांचल के गाँवों की दिनोंदिन बदतर होती जा रही स्थिति का चित्रण किया गया है। इनके अन्य उपन्यास हैं – 'गली आगे मुड़ती है' (1974 ई.), 'नीला चाँद' (1988 ई.), 'कुहरे में युद्ध' (1993 ई.), 'दिल्ली दूर है' (1993 ई.) आदि। 'नीला चाँद' में मध्यकाल के काशी का चित्रण है। 'कुहरे में युद्ध' तथा 'दिल्ली दूर है' – इन दोनों उपन्यासों में तराईन के युद्ध में पृथ्वीराज की हार से लेकर दिल्ली सल्तनत के दिनों की घटनाओं को समेटा गया है।

विवेकी राय ग्रामीण संवेदना के हिंदी के प्रमुख उपन्यासकारों में है। उनका प्रथम उपन्यास 'बबूल' 1964 ई. में प्रकाशित हुआ। उनके अन्य उपन्यास हैं – 'पुरुष पुराण' (1975 ई.), 'लोक ऋण' (1977 ई.), 'श्वेत पत्र' (1979 ई.), 'सोना माटी' (1983 ई.), 'समर शेष है' (1988 ई.), 'मंगल भवन' (1994 ई.) तथा 'अमंगहारी'। 'सोना माटी' में पूर्वांचल के ग्रामीण जीवन की व्यथा

का चित्रण किया गया है। यहाँ की मिट्टी सोना उगलती है पर लोग भूमिपतियों, नौकरशाही और नेताओं से त्रस्त हैं। 'समर शेष है' उन लोगों की कथा है जो आजादी मिलने के बावजूद 'सूरज' का इंतजार कर रहे हैं। 'मंगल भवन' में 1962 ई. के चीनी आक्रमण के बाद गाँवों पर पड़े प्रभाव का चित्रण किया गया है।

1969 ई. में प्रकाशित 'अपना चेहरा' **गोविंद मिश्र** का पहला उपन्यास है। उनके अन्य प्रमुख उपन्यास हैं – 'लाल पीली ज़मीन' (1976 ई.), 'हुजूर दरबार' (1981 ई.), 'पाँच आँगनों वाला घर' (1993 ई.) आदि। 'लाल पीली ज़मीन' में बुंदेलखंड के पिछड़ेपन, राजनीतिक चेतना विहीनता और जातीय संघर्ष का चित्रण किया गया है। 'पाँच आँगन वाला घर' उच्चवर्गीय परिवार के टूटने-बिखरने की कथा है।

राजकमल चौधरी ने ज़िंदगी की गलीज और नकारात्मक तत्वों से अपने उपन्यास का ढाँचा निर्मित किया है। उनके उपन्यासों में हर तरह के सामाजिक पाखंड का पर्दाफाश है। इनके उपन्यासों में वेश्याओं-समलैंगिकों की गतिविधियाँ, संबंधों के प्रति अनास्था का भाव, शराब-सेक्स में डूबे लोगों की उपस्थिति निरंतर दिखाई देती है। हालाँकि इन सबके द्वारा उन्होंने हर तरह की सामाजिक विद्रूपता का उद्घाटन करने का प्रयास किया है। इसके साथ ही वे मानवीय करुणा और संवेदना की तलाश भी करते हैं। गोपाल राय के अनुसार, ''... ऊपर से देखने पर राजकमल चौधरी का औपन्यासिक संसार एक बदबूदार नाली की तरह है जिसमें घिनौने और ज़हरीले कीड़े कुलबुला रहे हैं। पर इसके भीतर उपन्यासकार की पीड़ित संवेदना अंतर्धारा की तरह प्रवाहित है।'' (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.335) राजकमल चौधरी के प्रमुख उपन्यास हैं – 'नदी बहती थी' (1961 ई.), 'शहर था शहर नहीं था' (1966 ई.), 'देहगाथा' (1966 ई.), 'मछली मरी हुई' (1966 ई.) आदि। 'मछली मरी हुई' राजकमल चौधरी का प्रसिद्ध उपन्यास है। इसमें समलैंगिकता का संदर्भ है, पर इससे ज्यादा महत्वपूर्ण है मनुष्य के अंदर के विरोधाभासी प्रवृत्तियों का सफल चित्रण। राजकमल चौधरी मनुष्य के स्याह पक्ष के चित्रण के साथ उसके सामाजिक संदर्भ का भी संकेत करते हैं।

अमरकांत का पहला उपन्यास 'सूखा पत्ता' 1959 ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें प्रेम की टूटन और सामाजिक संघर्ष के संकल्प की कथा कही गयी है। 'आकाशपक्षी' (1967 ई.) में स्वातंत्र्योत्तर भारत के अंतर्विरोध की कथा कही गयी है। 'इन्हीं हथियारों से' (2003 ई.) अमरकांत का सबसे प्रसिद्ध उपन्यास है। इस उपन्यास में 1942 ई. के भारत छोड़ो आंदोलन से लेकर देश की आज़ादी तक उत्तर प्रदेश के बलिया के सामाजिक-राजनीतिक हलचलों को चित्रित किया गया है।

बदीउज़्ज़माँ के प्रसिद्ध उपन्यास 'एक चूहे की मौत' का प्रकाशन 1971 ई. में हुआ। इस उपन्यास में बदीउज़्ज़माँ ने प्रतीकात्मक रूप से 'व्यवस्था' का चरित्र-चित्रण किया है। 'छाको की वापसी' (1975 ई.) बदीउज्जमाँ का एक अन्य महत्वपूर्ण उपन्यास है। देश विभाजन पर आधारित इस उपन्यास में भारत से पूर्वी पाकिस्तान (बांग्लादेश) गए मुसलमानों के साथ होने वाले भेदभाव तथा उनकी पीड़ा और विवशता का चित्रण किया गया है।

मुंबई की जिंदगी के नकारात्मक पक्ष को यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत करने वाले **जगदंबा प्रसाद दीक्षित** का पहला उपन्यास 'कटा हुआ आसमान' 1971 ई. में प्रकाशित हुआ। 'कटा हुआ आसमान' के केंद्र में मुंबई के अध्यापक वर्ग की जद्दोजहद से भरी ज़िंदगी है। इसके साथ ही इस उपन्यास में देश के विभिन्न भागों से अवसर की तलाश में आए लोगों की कठिन जीवन स्थितियों का चित्रण किया गया है। जगदंबा प्रसाद दीक्षित का प्रसिद्ध उपन्यास 'मुर्दाघर' (1974 ई.) में पूरी तरह विद्रूप परिस्थिति में जीने को मजबूर लोगों की जिंदगी का मार्मिक

वर्णन किया गया है। 'मुर्दाघर' में बीमार, असहाय, गटर की संड़ाध में साथ रहने को मजबूर, देह-व्यापार में लगी स्त्रियाँ तथा व्यवस्था के अत्याचार को सहने को विवश लोगों की जिंदगी का चित्रण किया गया है। इनके एक अन्य उपन्यास 'अकाल' (1997 ई.) में गाँवों की दुर्दशा का चित्रण किया गया है।

जगदीश चंद्र का पहला उपन्यास 'यादों के पहाड़' 1966 ई. में प्रकाशित हुआ। इनका बेहद चर्चित और हिंदी के कुछ महत्वपूर्ण उपन्यासों में गिना जाने वाला 'धरती धन न अपना' दलित जीवन के यथार्थ को मार्मिक और तथ्यपरक रूप में पेश करता है। इस उपन्यास की कथाभूमि स्वतंत्रता पूर्व के पंजाब का एक गाँव है। 'आधा पुल' (1973 ई.) युद्ध की पृष्ठभूमि पर लिखा गया उपन्यास है। 'घास गोदाम' (1985 ई.) में दिल्ली महानगर के आसपास के गाँव तक फैलने की प्रक्रिया में वहाँ के किसानों की दुर्दशा का चित्रण किया गया है। 'नरक कुंड में वास' (1994 ई.) में 'धरती धन न अपना' से आगे की कथा है। उपन्यास का नायक गाँव की यंत्रणा से त्रस्त होकर शहर भाग आता है पर यहाँ भी उसे कोई राहत नहीं मिलती। यहाँ भी उसे विपरीत स्थिति के बीच ही रहना पड़ता है। जगदीश चंद्र के अन्य उपन्यास हैं – 'कभी न छोड़ें खेत' (1976 ई.), 'मुट्ठी भर काँकर' (1976 ई.), 'टुंडा लाट' (1978 ई.) और 'लाट की वापसी' (2000 ई.)।

नरेंद्र कोहली की पहचान 'रामायण' और 'महाभारत' के कथा-प्रसंगों को लेकर उपन्यास लिखने वाले लेखक के रूप में है। 'रामायण' और 'महाभारत' आधारित उपन्यास शृंखला से पूर्व 1972 ई. में 'आतंक' नाम से उनका पहला उपन्यास प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में अपराधियों और नेताओं के गठबंधन और शिक्षण संस्थाओं में अपराधियों के आतंक का चित्रण किया गया है। रामकथा शृंखला में नरेंद्र कोहली के प्रमुख उपन्यास – 'दीक्षा' (1975 ई.), 'अवसर' (1976 ई.) 'संघर्ष की ओर' (1978 ई.) तथा 'युद्ध' (1979 ई., दो भागों में) हैं। महाभारत की कथा पर आधारित इनके उपन्यास हैं – 'बंधन' (1988 ई.), 'अधिकार' (1990 ई.), 'कर्म' (1991 ई.), 'धर्म' (1993 ई.), 'अंतराल' (1995 ई.), 'प्रछन्न' (1997 ई.), 'प्रत्यक्ष' (1998 ई.) और 'निर्बंध' (2000 ई.)। महाभारत कथा आधारित इन उपन्यासों को 'महासमर' शृंखला के अंतर्गत लिखा गया है। रामकथा वाली शृंखला बाद में 'अभ्युदय' शीर्षक से दो खंडों में प्रकाशित हुई। 'रामायण' और 'महाभारत' के कथा-प्रसंग से उपन्यासों की रचना के अतिरिक्त नरेंद्र कोहली ने विवेकानंद के जीवन पर आधारित उपन्यास – 'अभिज्ञान' (1981 ई.) तथा दो भाग में 'तोड़ो कारा तोड़ो' (1992-93 ई.) लिखा है।

मंजूर एहतेशाम का पहला उपन्यास 'कुछ दिन और' 1976 ई. में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास दाम्पत्य जीवन पर लिखा गया है। इनका प्रसिद्ध उपन्यास 'सूखा बरगद' 1986 ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में स्वातंत्र्योत्तर भारत में मुस्लिम समाज के अंतर्द्वंद्व को अभिव्यक्त किया गया है। इनके अन्य उपन्यास हैं – 'दास्तान-ए-लापता' (1995 ई.) तथा 'बशारत मंजिल' (2004 ई.)। 'दास्तान-ए-लापता' में भोपाल के मध्यवर्गीय समाज में खत्म होती परस्परता का चित्रण किया गया है।

विनोद कुमार शुक्ल हिंदी के उन कुछ विशिष्ट उपन्यासकारों में हैं जिनकी भाषा और शिल्प की अपनी निजी पहचान है। इनका पहला उपन्यास 'नौकर की कमीज़' 1979 ई. में प्रकाशित हुआ। इनके अन्य उपन्यास हैं - 'खिलेगा तो देखेंगे' (1996 ई.) तथा 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' (1997 ई.)। विनोद कुमार शुक्ल मुख्य रूप से मध्यवर्गीय तथा निम्न-मध्ववर्गीय जीवन के उपन्यासकार हैं। 'नौकर की कमीज़' में उपन्यासकार ने यह दिखलाया है कि निम्नस्तरीय कर्मचारी किस प्रकार व्यवस्था और बाबुओं के द्वारा शोषण को अभिशप्त हैं।

'दीवार में एक खिड़की रहती थी' में पूँजीवादी-शहरी जीवन शैली का प्रतिरोध प्रतीकात्मक रूप से व्यक्त किया गया है।

भाषा, शिल्प और कथा की भंगिमा के स्तर पर अपनी निजी पहचान रखने वाले हिंदी के एक और प्रमुख उपन्यासकार **मनोहर श्याम जोशी** हैं। मनोहर श्याम जोशी का 'कुरू कुरू स्वाहा' 1980 ई. में प्रकाशित हुआ। यह उनका प्रथम और प्रयोगात्मक उपन्यास है। 'इसकी प्रयोगशीलता विशेषतः इसके शिल्प में है जहाँ एक ही नायक तीन स्तरों पर चलता है- (i) बुद्धिवादी जोशी (ii) किशोर मानसिकता वाला मनोहर (iii) तटस्थ नैरेटर। (रामदरश मिश्र, हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ.-183)

इस उपन्यास में मुंबई महानगर के अपराध, षड्यंत्र, नैतिक क्षरण तथा देह व्यापार की दुनिया को नए और जटिल अंदाज में प्रस्तुत किया गया है। 1982 ई. में प्रकाशित 'कसप' एक प्रेम कहानी है। इसके केंद्र में कुमाऊँ का मध्यवर्गीय समाज है। मनोहर श्याम जोशी के अन्य उपन्यास हैं – 'टा-टा प्रोफेसर' (1995 ई.), 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी' (1996 ई.), 'हमजाद' (1996 ई.) और 'क्याप' (2001 ई.)।

सुरेंद्र वर्मा का पहला उपन्यास 'अंधेरे से परे' 1980 ई. में प्रकाशित हुआ। सुरेंद्र वर्मा की ख्याति 1993 ई. में प्रकाशित बेहद लोकप्रिय और चर्चित उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' के कारण है। इस उपन्यास में महत्वाकांक्षी लड़की वर्षा वशिष्ट की छोटे शहर के रूढ़िग्रस्त परिवार से निकलकर बरास्ता राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय मुबंई के फिल्मी दुनिया की बुलंदियों को छूने की कथा कही गयी है। 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' (1998 ई.) तथा 'काटना शामी के वृक्ष का पद्म पंखुरी के धार से' इनके अन्य उपन्यास हैं।

संजीव का पहला उपन्यास 'किसनगढ़ के अहेरी' का प्रकाशन 1981 ई. में हुआ। इनके अन्य उपन्यास हैं – 'सर्कस' (1984 ई.), 'सावधान! नीचे आग है' (1986 ई.), 'धार' (1990 ई.), 'पाँव तले की दूब', 'जंगल जहाँ शुरू होता है' (2000 ई.), 'सूत्रधार' आदि। संजीव के उपन्यास लिखने की शैली शोधपूर्ण और समाजशास्त्रीय है। उनका 'सर्कस' उपन्यास सर्कस में काम करने वाले लोगों की ज़िंदगी पर आधारित है। 'सावधान! नीचे आग है' में कोयला खादानों की दुनिया है। 'सूत्रधार' में उन्होंने भोजपुरी के रंग कलाकार भिखारी ठाकुर के जीवन और रंगकर्म को उपन्यास में पिरोया है।

पंकज बिष्ट का पहला उपन्यास 'लेकिन दरवाजा' 1982 ई. में प्रकाशित हुआ। उनके एक अन्य उपन्यास 'उस चिड़िया का नाम' का प्रकाशन वर्ष 1989 ई. है। 'लेकिन दरवाजा' में साहित्यिक दुनिया में घर कर रही लालसा, प्रपंच, मूल्यहीनता को उजागर किया गया है। 'उस चिड़िया का नाम' पहाड़ी जीवन के विविध पहलुओं पर केंद्रित है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह के चर्चित उपन्यास 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' का प्रकाशन 1986 ई. में हुआ। यह उपन्यास बनारस के बुनकरों के कष्टमय जीवन पर आधारित है। इनके अन्य उपन्यास हैं – 'समर शेष है', 'ज़हरबाद', 'दंतकथा' (1990 ई.), 'मुखड़ा क्या देखे (1996 ई.) आदि।

उषा प्रियंवदा का पहला उपन्यास 'पचपन खंभे लाल दीवारें' का प्रकाशन 1961 ई. में हुआ। इस उपन्यास में आधुनिक सोच वाली स्त्री का परंपरागत मध्यवर्गीय समाज से द्वंद्व तथा इससे उपजी यंत्रणा का चित्रण किया गया है। 1967 ई. में प्रकाशित 'रुकोगी नहीं राधिका' में मनोविज्ञान, आधुनिकतावादी परिवेश और मूल्यबोध का जटिल ताना-बाना है। इस जटिल परिस्थिति में एक स्त्री कैसे भटकाव को अभिशप्त है, इसका तथ्यपरक चित्रण इस उपन्यास

में है। उषा प्रियंवदा के अन्य उपन्यास हैं- 'शेष यात्रा' (1984 ई.) तथा 'अंतर्वंशी' (2000 ई.) आदि।

कृष्णा सोबती के पहले उपन्यास 'मित्रो मरजानी' का प्रकाशन 1967 ई. में हुआ। इनके अन्य उपन्यास हैं – 'सूरजमुखी अंधेरे के' (1972 ई.), 'जिंदगीनामा' (1979 ई.), 'दिलो दानिश' (1993 ई.), 'समय सरगम' (2000 ई.) आदि। 'मित्रो मरजानी' में स्त्री की अस्मिता और यौनिकता के प्रश्न को साहसिक अंदाज में प्रस्तुत किया गया है। 'जिंदगीनामा' में बीसवीं सदी के प्रारंभिक वर्षों के पंजाब के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन का चित्रण किया गया है। 'समय सरगम' में मध्यवर्गीय परिवार में वृद्धों के जीवन और उनकी समस्याओं का चित्रण किया गया है।

मन्नू भंडारी का पहला उपन्यास 'एक इंच मुस्कान' राजेंद्र यादव के साथ सह-लेखक के रूप में 1962 ई. में प्रकाशित हुआ। 1971 ई. में मन्नू भंडारी का पहला स्वतंत्र उपन्यास 'आपका बंटी' प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में तलाकशुदा स्त्री द्वारा नये संबंध स्थापित करने के बाद पूर्व के दाम्पत्य संबंध से हुए संतान की जटिल स्थिति का चित्रण किया गया है। 1979 ई. में प्रकाशित इनका दूसरा उपन्यास 'महाभोज' में राजनीति के अपराधीकरण और मूल्यहीनता की कथा है।

ममता कालिया के प्रसिद्ध उपन्यास 'बेघर' का प्रकाशन 1971 ई. में हुआ। इस उपन्यास में उन्होंने परंपरागत सामाजिक व्यवस्था में स्त्री के ऊपर यौनशुचिता का बंधन किस क्रूरता और निर्णायक ढंग से आरोपित है, इसका चित्रण किया है। ममता कालिया के अन्य उपन्यास हैं – 'नरक दर नरक' (1975 ई.), 'प्रेम कहानी' (1980 ई.), 'एक पत्नी के नोट्स' 1997 ई.) आदि।

'उसके हिस्से का धूप' **मृदुला गर्ग** का पहला उपन्यास है। इसका प्रकाशन 1975 ई. में हुआ। उनके अन्य उपन्यास हैं- 'चितकोबरा' (1979 ई.), 'अनित्य' (1980 ई.), 'कठगुलाब' (1996 ई.) आदि। 'उसके हिस्से का धूप' तथा 'चितकोबरा' में आधुनिक नारी के मन और संबंध की जटिल स्थिति तथा देह संबंध में पारंपरिक वर्जना के अस्वीकार का चित्रण किया गया है। 'अनित्य' में स्वतंत्रता के दो दशक पूर्व से लेकर स्वतंत्रता के लगभग एक दशक के बाद की राजनीतिक गतिविधियों को विषय बनाया गया है।

1980 ई. के आसपास **सूर्यबाला** का उपन्यास 'सुबह के इंतज़ार तक' प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में निम्न-मध्यवर्गीय समाज की विडंबना को चित्रित किया गया है। 1991 ई. में प्रकाशित 'यामिनी कथा' में पूर्व पति से हुए संतान तथा वर्तमान पति के बीच मानसिक रूप से बँटी स्त्री का चित्रण किया गया है। 'जूझ' (1992 ई.) में शैक्षणिक परिसर (campus) की वास्तविकता को व्यक्त किया गया है।

चंद्रकांता ने उपन्यास लेखन की शुरुआत लघु उपन्यासों से की। 1981 ई. में उनके 'अर्थांतरण' तथा 'अंतिम साक्ष्य' – दो लघु उपन्यासों का प्रकाशन हुआ। 'बाकी सब खैरियत' (1983 ई.), 'ऐलान गली जिंदा है' (1984 ई.), 'यहाँ वितस्ता बहती है' (1992 ई.) तथा 'अपने-अपने कोणार्क' (1995 ई.) इनके अन्य उपन्यास हैं। इनके दो उपन्यास 'ऐलान गली जिंदा है' तथा 'यहाँ वितस्ता बहती है' कश्मीर की पृष्ठभूमि पर आधारित है। 'अपने-अपने कोणार्क' में एक पढ़ी लिखी आत्मनिर्भर लड़की का सामाजिक मान्यताओं के साथ उसके अंतर्द्वंद्व का चित्रण किया गया है।

ईरान की पृष्ठभूमि पर आधारित 'सात नदियाँ एक समुंदर' **नासिरा शर्मा** का पहला उपन्यास

है जिसका प्रकाशन 1984 ई. में हुआ। इस उपन्यास में नासिरा शर्मा ने तत्कालीन दौर के ईरान के राजनीतिक-सांस्कृतिक संकट का चित्रण किया है। 'शाल्मली' (1987 ई.) में हिंदू परिवार और समाज में तथा 'ठीकरे की मँगनी' (1989 ई.) में मुस्लिम समाज में स्त्री के दोयम दर्जे का चित्रण किया गया है। 'जिंदा मुहावरे' (1993 ई.) में विभाज़न के बाद भारत में रह गए या पाकिस्तान चले गए, दोनों ही स्थितियों में मुस्लिम समाज की यंत्रणा और अलगाव-बोध का चित्रण किया गया है।

प्रभा खेतान का पहला उपन्यास 1990 ई. में 'आओ पेपे घर चलें' नाम से प्रकाशित हुआ। इसमें अमेरिकी समाज में स्त्री के त्रासद जीवन का चित्रण है। 'छिन्नमस्ता' (1993 ई.), 'अपने-अपने चेहरे' (1994 ई.) 'पीली आँधी' (1996 ई.) आदि उपन्यासों में विभिन्न संदर्भों में भारतीय सामाजिक-पारिवारिक व्यवस्था में स्त्री के ऊपर आरोपित वर्जनाएँ, उनके शोषण तथा संघर्ष का चित्रण किया गया है।

मैत्रेयी पुष्पा का पहला उपन्यास 'स्मृति दंश' (1990 ई.) है। इसके बाद 'बेतवा बहती रही' (1993 ई.) का प्रकाशन हुआ। इन उपन्यासों में पुरुष वर्चस्व वाले समाज में स्त्री की यंत्रणा का वर्णन किया गया है। 'इदन्नमम' (1994 ई.) बुंदेलखंड की पृष्ठभूमि पर लिखा गया उपन्यास है। इस उपन्यास में भी विषय स्त्री का शोषण है लेकिन यहाँ स्त्री की संघर्षशीलता का भी चित्रण किया गया है। 'चाक' (1997 ई.), 'झूला नट' (1999 ई.), 'अल्मा कबूतरी' (2000 ई.) आदि मैत्रेयी पुष्पा के अन्य उपन्यास हैं।

1990 ई. में प्रकाशित अपने पहले उपन्यास – 'एक ज़मीन अपनी' में **चित्रा मुद्गल** ने विज्ञापन की दुनिया की मूल्यहीनता, पुरुष द्वारा स्त्री को भोग्या समझे जाने की स्थिति तथा स्त्री द्वारा पारंपरिक पुरुषवादी सोच के प्रतिरोध का चित्रण किया है। 2000 ई. में प्रकाशित 'आवाँ' में एक स्त्री के शोषण और संघर्ष की कथा है। देह को लेकर उसे बार-बार अनचाही स्थिति का सामना करना पड़ता है। इन सबके बावजूद वह मज़दूरों के अधिकार के लिए संघर्ष करती है। 'नालासोपारा' इनका अन्य महत्वपूर्ण उपन्यास है।

1998 ई. में **अलका सरावगी** का पहला उपन्यास 'कलिकथा वाया बाइपास' प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में मारवाड़ी समाज की पाँच पीढ़ियों की कथा है। मारवाड़ी समाज की कथा के साथ विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक हलचल को भी व्यक्त किया गया है। इनके अन्य उपन्यास हैं – 'शेष कादंबरी', 'एक ब्रेक के बाद' आदि।

बोध प्रश्न - 1

(क) निम्नलिखित उपन्यास तथा उनके लेखकों का सही युग्म बनाइए।

	उपन्यास			उपन्यासकार
(i)	तमस	–	(क)	मन्नू भंडारी
(ii)	सूखा बरगद	–	(ख)	भीष्म साहनी
(iii)	सोना माटी	–	(ग)	मंजूर एहतेशाम
(iv)	आपका बंटी	–	(घ)	निर्मल वर्मा
(v)	रात का रिपोर्टर	–	(ङ)	विवेकी राय

(ख) निम्नलिखित उपन्यासों का परिचय दो-तीन पंक्तियों में दीजिए।

(i) राग दरबारी

.....

.....

.....

(ii) काला जल

.....

.....

.....

(iii) अलग-अलग वैतरणी

.....

.....

.....

(iv) कुरु कुरु स्वाहा

.....

.....

.....

(ग) उपन्यास विधा में निम्नलिखित उपन्यासकारों के योगदान की चर्चा पाँच-पाँच पंक्तियों में कीजिए।

(i) नागार्जुन

.....

.....

.....

.....

.....

(ii) अमृतलाल नागर

.....

.....

.....

(iii) विवेकी राय

(iv) फणीश्वरनाथ रेणु

(iv) अमरकांत

15.3 हिंदी उपन्यास की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

अब तक आप हिंदी के प्रमुख उपन्यासकारों तथा उनके प्रमुख उपन्यासों का परिचय प्राप्त कर चुके हैं। इस भाग में हिंदी उपन्यास की प्रमुख प्रवृत्तियों की चर्चा की जा रही है।

15.3.1 ऐतिहासिक-पौराणिक उपन्यास

हिंदी में उपन्यास लेखन के लिए ऐतिहासिक सामग्री का उपयोग इसके विकास के प्रारंभिक दिनों से ही होने लगा। किशोरीलाल गोस्वामी हिंदी में ऐतिहासिक रोमांस के प्रवर्तक थे। बीसवीं सदी के पहले दशक में 'सुलताना रजिया बेगम वा रंगमहल में हलाहल', 'कनककुसुम वा मस्तानी' आदि अनेक रोमांसों की रचना उन्होंने की जिसमें भारतीय इतिहास के मुस्लिम काल से सामग्री ली गयी थी। प्रेमचंद युग के परवर्ती दौर में वृंदावनलाल वर्मा ने बुंदेलखंड के ऐतिहासिक परिदृश्य पर 'गढकुंडार' और 'विराटा की पद्मिनी' नामक उपन्यास लिखा।

इन उपन्यासों में उन्होंने वहाँ के सत्ता-संघर्ष, आपसी फूट, स्थानीय नायकों के शौर्य और बलिदान का चित्रण किया। प्रकारांतर से बुंदेलखंड की ये ऐतिहासिक परिस्थितियाँ तत्कालीन भारत की राजनैतिक स्थिति को प्रतिध्वनित करती हैं। आगे चलकर रांगेय राघव ने बंगाल के अकाल पर 'विषाद मठ' तथा मोहनजोदड़ो की सभ्यता को आधार बनाकर 'मुर्दों का टीला' लिखा। इस उपन्यास में द्रविड़ सभ्यता के सकारात्मक तत्वों का चित्रण किया गया है। ऐतिहासिक उपन्यासकारों में राहुल सांकृत्यायन का नाम प्रमुख है। 'जय यौधेय' और 'सिंह सेनापति' इनके प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास हैं। 'सिंह सेनापति' में पाँच सौ ई.पू. के वैशाली और तक्षशिक्षा को आधार बनाकर शोषण रहित समतापरक समाज का चित्रण किया गया है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में हर्षवर्धन के काल को आधार बनाते हुए उस युग के सांस्कृतिक-राजनीतिक स्थिति का चित्रण किया है। चतुरसेन शास्त्री ने तीन ऐतिहासिक उपन्यास – 'वैशाली की नगरवधू', 'वयं रक्षामः' तथा 'सोमनाथ' लिखे हैं। 'वैशाली की नगरवधू' में बुद्धकालीन समाज में नारी की स्थिति का चित्रण किया गया है। 'सोमनाथ' महमूद गजनवी के द्वारा सोमनाथ पर आक्रमण की घटना पर आधारित है। इसमें गजनवी की आक्रामकता के साथ तत्कालीन भारतीय समाज की सामरिक चेतनाविहीनता और धर्मभीरूता का भी संदर्भ है। यशपाल ने 'दिव्या' में ई.पू. दूसरी शताब्दी के मिलिंद के समय में समाज में नारी की स्थिति का चित्रण किया है। नरेंद्र कोहली ने राम और कृष्ण जैसे पौराणिक पात्रों पर आधारित अनेक उपन्यासों की रचना की है। शिवप्रसाद सिंह ने मध्ययुगीन बनारस पर 'नीला चाँद' नामक उपन्यास लिखा है।

15.3.2 मनोवैज्ञानिक उपन्यास

मानवीय जीवन के मनोवैज्ञानिक पक्ष प्रायः सभी उपन्यासों में न्यूनाधिक मात्रा में आते ही हैं, लेकिन यहाँ जब हम कोटि विशेष के रूप में मनोवैज्ञानिक उपन्यास की बात कर रहे हैं तो इसका अभिप्राय यह है कि ऐसे उपन्यासों में जीवन का अन्य पक्ष गौण रूप में तथा मनोवैज्ञानिक पक्ष प्रमुखता से चित्रित किया गया है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में भी पर्याप्त विविधता है। इलाचंद्र जोशी, डॉ. देवराज आदि उपन्यासकारों पर फ्रायड, एडलर और जुंग की मनोवैज्ञानिक स्थापनाओं का ज्यादा प्रभाव है, जबकि जैनेंद्र, अज्ञेय आदि उपन्यासकारों के यहाँ व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक चित्रण किंचित भिन्न रूपों में है।

हिंदी उपन्यास में व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक पक्ष का प्रमुखता से चित्रण करने वालों में जैनेंद्र प्रारंभिक उपन्यासकार हैं। डॉ. रामचंद्र तिवारी के अनुसार, ''जैनेंद्र गांधीवाद के अध्यात्म पक्ष पर बल देते हुए आत्म-पीड़न के द्वारा हृदय परिवर्तन में विश्वास करते हैं। उनके अनुसार, मानव में दो मूल प्रवृत्तियाँ हैं- स्पर्धा और समर्पण। ... जैनेंद्र ने 'अहं' की निस्सारता दिखाकर समर्पण द्वारा 'स्व' और 'पर' में अभेद स्थापित करने की चेष्टा की है।'' (हिंदी उपन्यास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ.-57) जैनेंद्र के 'सुनीता', 'परख', 'त्यागपत्र' आदि में उनके इस सिद्धांत का प्रतिफलन देखा जा सकता है। अज्ञेय के मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्तियों में बौद्धिकता, आत्मकेंद्रन, व्यक्ति-स्वतंत्रता और अहं प्रमुख तत्व हैं। इलाचंद्र जोशी के उपन्यासों पर फ्रायड आदि मनोवैज्ञानिक सिद्धांतकारों का प्रभाव ज्यादा है। गोपाल राय के अनुसार, ''इलाचंद्र जोशी के उपन्यासों का केंद्रीय कथ्य फ्रायड, एडलर, जुंग आदि के द्वारा प्रतिपादित मनोवैज्ञानिक सिद्धांत हैं जिन्हें जोशी जी ने औपन्यासिक जामा पहना दिया है।'' (हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृ.-180)। इलाचंद्र जोशी की यह प्रवृत्ति उनके 'संन्यासी', 'जहाज का पंछी' आदि उपन्यासों में देखी जा सकती है। मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकारों में एक प्रमुख नाम डॉ. देवराज का है। उनके प्रमुख उपन्यास हैं – 'पथ की खोज' (1951 ई.), 'बाहर-भीतर' (1954 ई.), 'अजय की डायरी' (1960 ई.) आदि। 'अजय की डायरी' उनका

प्रमुख उपन्यास है। इस उपन्यास में प्रेम और दाम्पत्य संबंध को मनोवैज्ञानिक शैली में प्रस्तुत किया गया है।

15.3.3 मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण

पूँजीवाद के विकास के साथ मध्यवर्ग अस्तित्व में आया। स्वतंत्रता से पूर्व भारत में मध्यवर्ग बनने लगा था। स्वतंत्रता के बाद के दौर में मध्यवर्ग की संख्या में अपार वृद्धि हुई। मध्यवर्गीय पात्र प्रेमचंद के उपन्यासों में भी मौजूद हैं। 'गबन' और 'निर्मला' मध्यवर्गीय जीवन पर ही केंद्रित है। प्रारंभिक हिंदी उपन्यासकारों में जैनेंद्र के उपन्यासों में, उनके कुछ समय बाद अज्ञेय के उपन्यासों में मध्यवर्ग का जीवन दिखाई देता है। आजादी के बाद के दौर में मध्यवर्गीय जीवन पर प्रचुर मात्रा में उपन्यास लिखे गए हैं। उपेंद्रनाथ अश्क, धर्मवीर भारती, राजेंद्र यादव, कमलेश्वर, मोहन राकेश, अमरकांत, गिरिराज किशोर, मनोहरश्याम जोशी, अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, निर्मल वर्मा, भीष्म साहनी, उषा प्रियंवदा, मंजूर एहतेराम, विनोद कुमार शुक्ल, सुरेंद्र वर्मा आदि मध्यवर्गीय जीवन के प्रमुख उपन्यासकार हैं।

15.3.4 ग्रामीण और आंचलिक जीवन का चित्रण

ग्रामीण और आंचलिक दोनों प्रकार के उपन्यासों में कथा-भूमि प्रायः गाँव ही होता है, लेकिन इन दोनों कोटियों के उपन्यासों की प्रस्तुति में भाषा और शिल्प का अंतर हो जाता है। आंचलिक उपन्यास में नायक एक तरह से वह क्षेत्र विशेष हो जाता है जिसे उपन्यासकार अपने उपन्यास में लेता है। जैसे फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों में बिहार का पूर्णिया अंचल, रामदरश मिश्र के उपन्यासों में गोरखपुर क्षेत्र, उदय शंकर भट्ट के उपन्यास में मुंबई के पास का बर्सोवा गाँव आदि। आंचलिक उपन्यासों में उस अंचल विशेष की जीवन और समस्याओं के साथ ही सांस्कृतिक तत्वों – बोली-बानी, टोन, रूढ़ि, मान्यताएँ, गीत-संगीत-नृत्य, आचार-व्यवहार की विशिष्टता को प्रमुखता के साथ चित्रित किया जाता है। फणीश्वरनाथ 'रेणु', उदयशंकर भट्ट, रामदरश मिश्र, शिवप्रसाद सिंह, विवेकी राय आदि प्रमुख आंचलिक उपन्यासकार हैं।

सिर्फ ग्रामीण जीवन पर केंद्रित उपन्यास इस अर्थ में भिन्न होता है कि उसका जोर सांस्कृतिक तत्वों के चित्रण पर उतना अधिक नहीं होता है। ग्रामीण जीवन पर उपन्यास लिखने की परंपरा हिंदी में प्रारंभ से ही दृष्टिगोचर होने लगती है। प्रेमचंद, नागार्जुन, रामदरश मिश्र, विवेकी राय आदि ग्रामीण जीवन के प्रमुख उपन्यासकार हैं।

शिवपूजन सहाय, नागार्जुन आदि ऐसे उपन्यासकार हैं जिन्होंने कथा तो ग्रामीण जीवन की कही है पर इनके उपन्यासों पर आंचलिकता का भी प्रभाव है।

15.3.5 स्त्री संदर्भ

हिंदी में उपन्यास लेखन की शुरुआत ही स्त्री संदर्भ से होता है। 1870 ई. में प्रकाशित पं. गौरीदत्त की देवरानी जेठानी की कहानी', 1872 ई. में मुंशी ईश्वरी प्रसाद और मुंशी कल्याण राय लिखित 'वामा शिक्षक', 1877 ई. में पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी द्वारा लिखित 'भाग्यवती' – इन सभी उपन्यासों का संदर्भ स्त्री जीवन है। हालाँकि ये उपन्यास उपदेशात्मक प्रवृत्ति के हैं। प्रेमचंद के उपन्यासों में स्त्री संदर्भ की अभिव्यक्ति में महत्वपूर्ण बदलाव आया। उन्होंने उपदेशात्मकता की बजाए भारतीय सामाजिक संरचना में स्त्रियों के शोषण के साथ ही उनकी संघर्षशीलता को उद्घाटित किया। 'गबन', 'निर्मला' तथा उनके अन्य उपन्यासों में उनकी इस प्रवृत्ति को देखा जा सकता है। जैनेंद्र के उपन्यासों में स्त्री की पीड़ा को नैतिक और

मनोवैज्ञानिक अंतर्द्वंद्व के साथ चित्रित किया गया है। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की 'अलका', विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' की 'माँ' तथा 'भिखारिणी' में स्त्री के आदर्श रूप को पेश किया गया है। हजारीप्रसाद द्विवेदी के 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में स्त्री के सशक्त रूप का चित्रण हुआ है। इसी तरह आचार्य चतुरसेन की 'वैशाली की नगरवधू' में अम्बपाली अपने समय-विशेष में एक मजबूत स्त्री चरित्र है। यशपाल का उपन्यास 'दिव्या' स्त्री जीवन से जुड़ी विडंबनाओं पर केंद्रित है। इनके प्रसिद्ध उपन्यास 'झूठा सच' में स्त्रियों के जुझारू रूप का चित्रण हुआ है। तारा इस उपन्यास की सबसे मजबूत और सकारात्मक पात्र है। नागार्जुन ने मिथिला के समाज में स्त्रियों की दशा का चित्रण अपने उपन्यासों में किया है। इस दृष्टि से 'रतिनाथ की चाची' उनका सबसे महत्वपूर्ण उपन्यास है।

उषा देवी मित्र महिला उपन्यासकारों में प्रारंभिक प्रमुख नाम है। वे प्रेमचंद युग तथा प्रेमचंदोत्तर युग में सक्रिय थीं। देश की आज़ादी के बाद भारतीय समाज में स्त्री के शोषण और संघर्ष को अनेक लेखिकाओं ने मजबूती से रखा। इनमें उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, मृदुला गर्ग, सूर्यबाला, ममता कालिया, नासिरा शर्मा, मैत्रेयी पुष्पा आदि प्रमुख उपन्यासकार हैं।

15.3.6 दलित संदर्भ

दलित समाज की पीड़ा और वंचनाओं की प्रारंभिक अभिव्यक्ति प्रेमचंद के उपन्यासों में दिखाई देती है। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने 1928 ई. में 'बुधुआ की बेटी' लिखा। दलित विषय पर केंद्रित यह प्रारंभिक उपन्यास है। किसी दलित लेखक द्वारा लिखा गया हिंदी का पहला दलित उपन्यास 'घर की राह' है। श्रीयुत इंद्र बसावड़ा के इस उपन्यास का प्रकाशन 1935 ई. में हुआ। 1978 ई. में अमृतलाल नागर ने 'नाच्यौ बहुत गोपाल' लिखा। दलितों के जीवन पर प्रमुखता से लिखने वालों में सबसे महत्वपूर्ण नाम जगदीश चंद्र का है। इनका 'धरती धन न अपना' (1972 ई.) हिंदी का एक प्रमुख दलित उपन्यास है। इस विषय पर उन्होंने अन्य कई उपन्यास लिखें।

दलित जीवन पर स्वयं दलित उपन्यासकारों द्वारा अनेक महत्वपूर्ण उपन्यास लिखे गए हैं। रजत रानी मीनू के अनुसार, 1954 ई. में प्रकाशित देवीलाल सेन के 'मानव की परख' तथा डॉ. रामजी लाल सहायक की 'बंधनमुक्त' से दलित उपन्यास लेखन की शुरुआत हुई।

जयप्रकाश कर्दम, मोहनदास नैमिशराय, धर्मवीर, सुशीला टाकभौरे आदि दलित लेखकों ने दलित जीवन के विविध पक्षों पर कई महत्वपूर्ण उपन्यास लिखे हैं। 'छप्पर' जयप्रकाश कर्दम का प्रसिद्ध उपन्यास है। मोहनदास नैमिशराय ने झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की सहयोगी झलकारी बाई के जीवन पर 'वीरांगना झलकारी बाई' उपन्यास लिखा है। इन्हीं का 'आज बाजार बंद है' उपन्यास जारकर्म में शामिल स्त्रियों की मुक्ति-संघर्ष पर लिखा गया है। इनका एक अन्य प्रसिद्ध उपन्यास 'मुक्तिपर्व' है। धर्मवीर का 'पहला ख़त' पत्र शैली में लिखा गया दलित उपन्यास है।

सत्यप्रकाश का 'जस तस भई सबेर', उमराव सिंह जाटव का 'थमेगा नहीं विद्रोह', सुशीला टाकभौरे का 'नीला आकाश', कावेरी का 'मिस रमिया', रूप नारायण सोनकर का 'डंक' तथा 'सुअरदान', कैलाश चंद्र चौहान का 'सुबह के लिए', टेकचंद का 'दाई', अजय नावरिया का 'उधर के लोग' आदि दलित लेखकों द्वारा लिखे गए प्रमुख चर्चित उपन्यास हैं।

बोध प्रश्न-2

(क) निम्नलिखित कथनों में रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।

(i) ..... ऐतिहासिक रोमांस के प्रवर्तक थे।

(ii) 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में .....के काल से कथा-वस्तु ली गई है।

(iii) मनोवैज्ञानिक उपन्यास 'अजय की डायरी' के लेखक .....हैं।

(iv) तारा ..... नामक उपन्यास की एक स्त्री पात्र है।

(v) 'नाच्यौ बहुत गोपाल' के लेखक ..... हैं।

(ख) हिंदी में ऐतिहासिक उपन्यास के विकास पर प्रकाश डालिए।
(उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

(ग) ग्रामीण उपन्यास तथा आंचलिक उपन्यास में अंतर स्पष्ट करते हुए इन दोनों वर्गों के कुछ प्रमुख उपन्यासकारों के नाम बताइए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

(घ) हिंदी के मध्यवर्गीय जीवन पर केंद्रित उपन्यासों पर प्रकाश डालिए।
(उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

15.4 सारांश

- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास का परिदृश्य विविधताओं से भरा हुआ है।
- इस दौर में ग्रामीण जीवन, मध्यवर्गीय जीवन, मुस्लिम समाज, स्त्री तथा दलित जीवन के अनेकानेक संदर्भों पर उपन्यास लिखे गए।
- ग्रामीण जीवन पर लिखने वाले प्रमुख उपन्यासकारों में प्रेमचंद, नागार्जुन, विवेकी राय आदि प्रमुख हैं।
- स्वातंत्र्योत्तर दौर में शहरी जीवन को केंद्र बनाकर लिखने वाले उपन्यासकारों की संख्या सर्वाधिक है।
- फणीश्वरनाथ रेणु ने आंचलिक उपन्यास की विशिष्ट शैली का विकास किया। इस शैली में उपन्यास लेखन करने वालों में रेणु के अतिरिक्त उदयशंकर भट्ट, रामदरश मिश्र, शिवप्रसाद सिंह आदि प्रमुख हैं।
- स्त्री जीवन पर भी इस दौर में बहुआयामी रचनाएँ हुईं। उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, चंद्रकांता, नासिरा शर्मा, मैत्रेयी पुष्पा आदि ने स्त्री के सरोकारों को उपन्यासों में प्रमुखता से पिरोया।

15.5 उपयोगी पुस्तकें

- *हिंदी उपन्यास* - रामचंद्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
- *हिंदी उपन्यास का इतिहास* - गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- *हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा* - रामदरश मिश्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

15.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

(क) (i) - (ख)

(ii) - (ग)

(iii) - (ङ)

(iv) - (क)

(v) - (घ)

(ख) देखें भाग - 15.2

(ग) देखें भाग - 15.2

बोध प्रश्न - 2

(क) (i) किशोरीलाल गोस्वामी

(ii) हर्षवर्धन

(iii) डॉ. देवराज

(iv) झूठा सच

(v) अमृतलाल नागर

(ख) देखें भाग – 15.3.1

(ग) देखें भाग – 15.3.4

(घ) देखें भाग – 15.3.3

इकाई 16 हिंदी नाटक का विकास

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 भारतेंदु युगीन हिंदी नाटक

16.3 द्विवेदी युगीन हिंदी नाटक

16.4 प्रसाद युगीन हिंदी नाटक

16.5 प्रसादोत्तर हिंदी नाटक

16.6 नाटक के अन्य रूप

- 16.6.1 गीति नाट्य / काव्य नाटक
- 16.6.2 हिंदी एकांकी
- 16.6.3 रेडियो नाटक
- 16.6.4 नुक्कड़ नाटक

16.7 सारांश

16.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

16.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

16.0 उद्देश्य

इस खंड की चार इकाइयों में आप दो प्रमुख गद्य विधाओं–उपन्यास तथा कहानी के विकास की जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। इस इकाई में आपको नाट्य साहित्य की जानकारी प्रदान की जाएगी।

इसे पढ़ने के बाद आप :

- हिंदी नाटक का उदय और उसके विकास क्रम के बारे में जान सकेंगे तथा
- नाटक के विकास क्रम के अंतर्गत भारतेंदु युगीन हिंदी नाटक, द्विवेदी युगीन हिंदी नाटक, प्रसाद युगीन और प्रसादोत्तर हिंदी नाटक तथा नाटक के अन्य रूपों के बारे में भी जान सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

गद्य की अन्य विधाओं से नाटक इस दृष्टि से भिन्न होता है कि अन्य विधाएँ पढ़ी जाने के लिए लिखी जाती हैं जबकि नाटक देखने के लिए लिखा जाता है। दृश्य प्रस्तुति नाट्य साहित्य की अनिवार्य अपेक्षा है। इसी कारण से नाटक का विधागत स्वरूप गद्य की अन्य विधाओं से भिन्न होता है। रंगमंच के अन्य तत्वों को ध्यान में रखते हुए गद्य की इस विधा को संवाद के माध्यम से पेश किया जाता है।

नाटक का अध्ययन करते समय आपको यह ध्यान रखना जरूरी है कि आधुनिक युग में नाटक गद्य विधा है किंतु नाट्य रचना पूर्णतया अथवा विशुद्ध रूप से गद्य तक सीमित नहीं होती, उसमें पद्य का भी समावेश हो सकता है। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि काव्य-नाटक लिखे जाने की परंपरा प्राचीन काल से मौजूद है। संस्कृत और भारतीय भाषाओं में ही नहीं दुनिया भर में काव्य नाटकों की रचना हुई हैं।

हिंदी नाट्य साहित्य की परंपरा का आरंभ आधुनिक काल (19वीं शताब्दी) से हुआ है। हिंदी से पूर्व संस्कृत और प्राकृत में समृद्ध नाट्य परंपरा थी लेकिन हिंदी नाटकों का विकास आधुनिक युग में ही संभव हो सका। इसका कारण शायद यह था कि संस्कृत नाटकों के युग के बाद हिंदी क्षेत्र में रंगमंच की परंपरा सिलसिलेवार ढंग से कायम नहीं रह सकी थी। परिणामतः नाट्य लेखन की परंपरा का विकास भी न हो सका।

हिंदी का नाट्य लेखन उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से ही शुरू हुआ। हिंदी नाटक के विकास को हम निम्नलिखित ढंग से कालक्रमानुसार विभाजित कर सकते हैं :

- भारतेंदु युगीन हिंदी नाटक
- द्विवेदी युगीन हिंदी नाटक
- प्रसाद युगीन हिंदी नाटक
- प्रसादोत्तर हिंदी नाटक

16.2 भारतेंदु युगीन हिंदी नाटक

हिंदी नाटक की सशक्त परंपरा भारतेंदु युग में शुरू हुई। इस काल के सभी प्रतिभा संपन्न रचनाकारों ने गद्य की विविध विधाओं में योगदान दिया किंतु केंद्रीय विधा नाटक ही रही। प्राचीन संस्कृत, बंगला, मराठी, अंग्रेजी आदि भाषाओं के नाटकों से प्रभाव ग्रहण करते हुए नाटक का नया ढाँचा निर्मित हुआ। ब्रजभाषा पद्य की रूढ़ियों से मुक्ति पाकर खड़ी बोली गद्य में नाट्य लेखन की शुरूआत हुई। मौलिक नाट्य लेखन के साथ-साथ संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला से प्रचुर मात्रा में अनुवाद हुआ। भारतेंदु न केवल आधुनिक हिंदी नाटक के जनक हैं बल्कि हिंदी नाट्य परंपरा में जागरण-सुधार युग की संपूर्ण चेतना को प्रतिष्ठित करने वाले अग्रदूत भी हैं। भारतेंदु से पहले महाराज विश्वनाथ सिंह का 'आनंद रघुनंदन' और गोपालचंद्र गिरिधरदास का 'नहुष' नाटक मिलते हैं; किंतु ये दोनों ही ब्रजभाषा में लिखित हैं और नाट्यकला की कसौटी पर भी खरे नहीं उतरते। भारतेंदु ने अपनी नवजागरणपरक चेतना तथा दृष्टि की आधुनिकता से नाट्य-कला को जनप्रियता तथा कलात्मकता प्रदान की। उन्होंने मौलिक तथा अनूदित दोनों ही तरह के नाटक हिंदी को दिए। उनके मौलिक नाटकों में 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'विषस्य विषमौषधम्', 'चंद्रावली', 'भारत दुर्दशा', 'नीलदेवी', 'सती प्रताप', 'अंधेर नगरी' तथा संस्कृत से अनुवादों में 'रत्नावली', 'पाखंड विडंबन', 'मुद्राराक्षस', 'धनंजय विजय', 'कर्पूर मंजरी'; बंगला से अनुवादों में 'भारत जननी'; अंग्रेजी से अनुवादों में 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' का 'दुर्लभ बंधु' नाम से अनुवाद विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

नाटक के माध्यम से भारतेंदु ने अपने समय की समस्याओं को जन सामान्य के सामने रखा। समाज में व्याप्त बुराइयों, अधिकारी वर्ग के भ्रष्टाचार और शासकीय अत्याचार पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने में नाटक और रंगमंच की भूमिका का बड़ा ही सार्थक उपयोग किया। वे रंगमंच की प्रभावी शक्ति को पहचानते थे। अपने नाटकों के माध्यम से उन्होंने अपने समय और समाज की अनेक समस्याओं को जाँचा-परखा तथा जन-सामान्य को राष्ट्रीय चेतना की ओर उन्मुख किया।

भारतेंदु के नाटकों की प्रमुख विशेषता है प्राचीन और नवीन का समन्वय। उनके नाटक संस्कृत नाट्य शैली से काफी प्रभावित हैं किंतु पश्चिमी नाट्य शैली को भी उन्होंने दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया। आवश्यकतानुसार दोनों को अपनाया है। उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, पौराणिक और श्रृंगारपरक नाटकों की रचना की है। वस्तु-विन्यास में वे अर्थ प्रकृतियों, कार्यावस्थाओं और संधियों के बंधन में बँधकर नहीं चले हैं। पात्र-सृष्टि में उन्होंने भारतीय आदर्शवाद और पश्चिमी यथार्थवाद दोनों का आश्रय लिया है। पात्रों के चरित्र विकास में उतार-चढ़ाव नहीं है फिर भी किसी वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र अपने आप में बड़े यथार्थ और जीवंत हैं। जैसे, उनके ब्राह्मण पात्र समाज को रूढ़ियों में जकड़ते हैं और अपने पेट का पालन ही सर्वोपरि समझते हैं। ऐसे पात्रों के द्वारा लेखक ने व्यंग्य की सृष्टि की है। भारतेंदु का महत्व इस बात में है कि उन्होंने भिन्न वर्गों, व्यवसायों और जातियों के लोगों को उनकी प्रधान विशेषताओं के साथ पहली बार रंगमंच पर एक साथ प्रस्तुत किया है। उनके संवाद गद्य-पद्य दोनों में हैं। भाषा का प्रयोग पात्रानुसार है। कविताओं ओर गीतों का खूब प्रयोग किया गया है।

भारतेंदु के लेखन ने उनके समसामयिक रचनाकारों को प्रभावित किया। प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', शीतलाप्रसाद त्रिपाठी, बालकृष्ण भट्ट आदि ने भारतेंदु का अनुसरण किया और नाटक लेखन तथा प्रस्तुतीकरण की धूम-सी मच गई। भारतेंदु ने नाटक लेखन के अलावा नाट्य सिद्धांतों पर भी विचार किया तथा नाट्य मंडली की स्थापना की। भारतेंदु और उनके सहयोगी लेखक प्रतापनारायण मिश्र ओर 'प्रेमघन' नाटकों के अभिनय की व्यवस्था तो करते ही थे स्वयं अभिनय भी करते थे। इस तरह वे तत्कालीन पारसी रंगमंच की कुरीतियों के विरोध में जनरुचि का परिष्कार करने में भरसक संलग्न थे।

भारतेंदु युगीन नाटककार

भारतेंदु ने नाटक के क्षेत्र में जो पथ प्रदर्शन किया उसका सिलसिला जारी रहा। नाट्य दिशाएँ वे ही रहीं जिनकी शुरूआत भारतेंदु ने की थी। इस युग में सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, राष्ट्रीय चेतनापरक और व्यंग्यात्मक नाटकों के अलावा प्रेम प्रधान नाटक भी लिखे गए। इस युग के नाटकों का मूल स्वर नीतिपरक रहा। आगे हम इस युग के प्रमुख नाटककारों और उनके नाटकों की चर्चा करेंगे।

पंडित बालकृष्ण भट्ट ने पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक नाटक और प्रहसन लिखे तथा बंगला के दो नाटकों का अनुवाद किया। इनके प्रमुख नाटक हैं – 'दमयंती स्वयंवर', 'वेणी संहार', 'किरातार्जुनीय', 'बृहन्नला', 'जैसा काम वैसा परिणाम', 'नई रोशनी का विष' आदि। अपने नाटकों में भट्टजी ने प्रधानतया संस्कृत नाट्य परंपरा को अपनाया है। उनके प्रहसन तीखे हैं और सामाजिक कुरीतियों तथा पाखंड पर व्यंग्य करते हैं।

राधाकृष्ण दास ने 'महाराणा प्रतापसिंह', 'महारानी पद्मावती' तथा 'दुःखिनी बाला रूपक' नामक नाटकों की रचना की। इनमें पहले दो ऐतिहासिक हैं तीसरा नाटक दुखांत है। इसमें सामाजिक व्यंग्य को उभारा गया है।

प्रतापनारायण मिश्र लेखन में भारतेंदु को अपना आदर्श मानते थे और अपनी विनोदप्रियता तथा व्यंग्य-वक्रता के लिए प्रसिद्ध थे। 'हमीर हठ', 'गौ संकट नाटक', 'कलि कौतुक रूपक', 'जुआरी खुआरी प्रहसन' आदि उनके प्रमुख नाटक हैं। **लाला श्री निवासदास** ने 'रणधीर और प्रेममोहिनी' नामक दुखांत नाटक की रचना की। यह उस समय काफी लोकप्रिय हुआ ओर कई बार मंच पर प्रस्तुत किया गया। इसके उर्दू और गुजराती अनुवाद भी हुए। उन्होंने 'संयोगिता स्वयंवर' तथा 'प्रहलाद चरित्र' नामक पौराणिक नाटक भी लिखे।

काशीनाथ खत्री ने एक अंक के लघु रूपकों की रचना की। इनमें 'ग्राम पाठशाला', 'निकृष्ट नौकरी', 'सिंधु देश की राजकुमारियाँ', 'गुन्नौर की रानी' आदि प्रमुख हैं। खत्री जी स्वभाव से सुधारवादी थे, इसलिए उनकी रचनाओं में सुधार की प्रेरणा ही प्रमुख है। इनका 'बाल विधवा संताप' नाटक ईश्वरचंद विद्यासागर की प्रेरणा से लिखा गया है।

राधाचरण गोस्वामी ने 'अमरसिंह राठौर', 'श्रीदामा', 'तन-मन-धन गोसाई जी के अर्पण' और 'बूढ़े मुँह मुहासे' नाटकों की रचना की। **देवकीनंदन खत्री** ने 'सीताहरण', 'रूक्मिणी हरण', 'कंस वध', 'बाल विवाह', 'स्त्री चरित्र', 'सैकड़ों के दस-दस' आदि नाटक लिखे।

यहाँ हमने इस युग के कुछ प्रमुख नाटककारों के नाटकों के कुछ तत्वों का उल्लेख किया है। इनके अलावा भी अनेक नाटक लिखे गए। इस युग में भारतेंदु युग के सभी लेखकों ने नाटक लिखे। विषय तथा प्रवृत्ति की दृष्टि से इन नाटकों का उद्देश्य समाज का सुधार और परिष्कार तथा आदर्श की स्थापना था। पौराणिक विषयों तथा राम और कृष्ण की लीलाओं पर लिखे नाटकों का उद्देश्य भारतीय महापुरुषों के विस्मृत प्राय गौरव की याद दिलाकर जन-जीवन में आत्म-गौरव की भावना जगाना था। सामाजिक व्यंग्यात्मक नाटकों द्वारा कुरीतियों, पाखंड और भ्रष्टाचार को दूर करने का प्रयास किया गया। यही कारण है कि अनेक नाटकों में बाल-विवाह, अनमेल विवाह, विधवा विवाह या स्त्रियों की दीन दशा, पर्दा प्रथा आदि के प्रश्न को उठाया गया है। देश-दुर्दशा संबंधी नाटकों द्वारा देश के प्रति प्रेम, कर्त्तव्य और राष्ट्रीयता की भावना को जगाने का प्रयास किया गया है। रोमानी प्रेम संबंधी नाटक उपदेश प्रधान होते हुए भी रीतिकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियों का ही विस्तार हैं। इस तरह इन नाटकों के सृजन के पीछे तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का विशेष योग था।

नाटकों के अनुवाद

मौलिक नाटक लेखन के साथ-साथ संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी के नाटकों के अनुवाद की जो परंपरा भारतेंदु ने शुरू की थी वह उनके बाद भी लंबे समय तक चलती रही। संस्कृत से 'रत्नावली', 'प्रबोध चंद्रोदय', 'अभिज्ञान शाकुंतलम्', 'मालविकाग्निमित्रम्', 'उत्तर रामचरितम्', 'मुद्राराक्षस', 'कर्पूर मंजरी' आदि नाटकों के अनुवाद हुए।

बंगला से माइकेल मधुसूदन दत्त के 'शर्मिष्ठा' और 'पद्मावती' का अनुवाद बालकृष्ण भट्ट ने किया। 'एई की सभ्यता बोले' का अनुवाद 'क्या इसी को सभ्यता कहते हैं' नाम से ब्रजनाथ ने किया। लक्ष्मीनारायण चक्रवर्ती के नाटक 'नवाब सिराजुद्दौला' का अनुवाद शिवनंदन त्रिपाठी ने किया। ब्रह्मनंदन सहाय ने 'सप्तम प्रतिभा' और 'बूढ़ा वर' का अनुवाद किया।

अंग्रेजी से शेक्सपियर के 'किंग लियर', 'ओथेलो', 'मर्चेंट ऑफ वेनिस', 'ऐज यू लाइक इट', 'रोमियो एंड जूलियट' के अनुवाद किए गए। जोसेफ एडीसन के 'केटो' नाटक का अनुवाद 'केटो वृत्तांत' नाम से किया गया।

प्रचुर मात्रा में अनुवादों ने हिंदी नाटक को विषय और शिल्प की विविधता से संपन्न किया साथ ही बाद के हिंदी नाटककारों पर इन अनुवादों का प्रभाव भी कम नहीं पड़ा।

16.3 द्विवेदी युगीन हिंदी नाटक

हिंदी के मौलिक साहित्यिक नाटकों की दृष्टि से भारतेंदु के बाद एक ठहराव-सा आ गया। उनके परवर्ती नाटककारों में कोई भी इतनी विशिष्ट प्रतिभा और नाटकीय कौशल से संपन्न न था जो इस युग में भारतेंदु के स्थान को ग्रहण करता। नाट्य लेखन में वैसा उत्साह और गति न रहने के बावजूद थोड़ा बहुत नाट्य सृजन जारी रहा जिसमें आगामी श्रेष्ठ नाट्यलेखन

की संभावनाएँ स्पष्ट मौजूद हैं। प्रसाद का नाट्य लेखन – 'सज्जन' (1910 ई॰-11 ई॰) कल्याणी 'परिणय' (1912 ई॰) 'प्रायश्चित' (1914 ई॰) – इसी काल में शुरू हो गया था। द्विवेदी युग (1900 ई॰–1920 ई॰) में पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, रोमांचक विषयों पर नाटक लिखे गए। ये सभी नाटक राष्ट्रीय चेतना और समाज सुधार की भावना से लिखे गए। पौराणिक नाटकों में पौराणिक आख्यानों और चरित्रों के माध्यम से उपदेश देने की प्रवृत्ति ही झलकती है। नाट्य कला का सामान्य विकास इस समय नहीं मिलता। इस युग के कुछ नाटक हैं – बनवारी लाल का 'कंसवध' (1909 ई॰), नारायण सहाय का 'रामलीला' (1911 ई॰), लक्ष्मीप्रसाद का 'उर्वशी' (1910 ई॰), जयशंकर प्रसाद का 'करुणालय' (1912 ई॰), 'राज्यश्री' (1915 ई॰), बद्रीनाथ भट्ट का 'कुरुवन दहन' (1915 ई॰), 'चंद्रगुप्त' (1915 ई॰), वृंदावनलाल का 'सेनापति ऊदल' (1909 ई॰), प्रतापनारायण मिश्र का 'भारत दुर्दशा', भगवती प्रसाद का 'वृद्ध विवाह' (1905 ई॰), मिश्रबंधु का 'नेत्रोन्मीलन' (1915 ई॰) आदि।

पारसी रंगमंच पर प्रस्तुति के लिए रोमांचकारी नाटक भी द्विवेदी युग में लिखे गए। इनकी विषय-वस्तु फारसी प्रेमाख्यानों और पौराणिक आख्यानों पर आधारित है। ये नाटक 'कोरस' से आरंभ होते थे और प्रमुख कथा के समानांतर एक 'प्रहसन' भी चलता था जो दर्शकों को हँसाने या फिर मूल नाटक की भावधारा में परिवर्तन करने के लिए प्रयुक्त होता था। इन नाटकों की भाषा पहले उर्दू-फारसी मिश्रित हुआ करती थी। बाद में साधारण बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया जाने लगा। इन नाटककारों में मोहम्मद मियाँ 'रौनक', सैयद मेंहदी 'हसन', नारायण प्रसाद 'बेताब', आगा मोहम्मद हश्र 'कश्मीरी' और राधेश्याम कथावाचक आदि प्रमुख हैं।

द्विवेदी युगीन प्रहसनों में बद्रीनाथ भट्ट का 'चुंगी की उम्मीदवारी' (1912 ई), गंगाप्रसाद श्रीवास्तव का 'उलटफेर' (1918 ई॰) और 'नोक-झोंक (1918 ई॰) उल्लेखनीय हैं।

अनूदित नाटक – इस युग में संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला भाषा से कुछ नाटकों के अनुवाद भी किए गए हैं। संस्कृत से सदानंद अवस्थी ने 'नागानंद' (1906 ई), लाला सीताराम ने 'मृच्छकटिकम्' (1913 ई॰) और 'कविरत्न' सत्य नारायण ने 'उत्तर रामचरितम्' का अनुवाद किया। अंग्रेजी से शेक्सपियर के नाटकों में मूल नाटकों की आत्मा सुरक्षित रखने की बजाए देशीकरण (नाटक को हिंदी पाठकों के लिए बोधगम्य और सुरुचिपूर्ण बनाने) पर अधिक बल दिया गया।

द्विवेदी युग के नाटक पारसी थियेटर के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सके। प्रसाद के प्रारंभिक नाटकों पर भी पारसी थियेटर का प्रभाव है।

बोध प्रश्न-1

नीचे दिए गए प्रश्नों का उत्तर दीजिए।

(क) हिंदी नाटकों से पूर्व नाटकों की कुछ विशेषताएँ नीचे बताई गई हैं, उनमें से कौन-सी विशेषता उन पर लागू नहीं होती?

(i) कथावस्तु का आधार धार्मिक-पौराणिक आख्यान हैं।

(ii) इन नाटकों का मूल उद्देश्य जन-सामान्य को जागृत करना, उसमें आत्म-विश्वास जगाना था।

(iii) इन नाटकों में पद्यात्मक संवाद अधिक हैं।

(iv) इनमें से कोई नहीं।

(ख) हिंदी नाट्य-साहित्य को कितने युगों में बाँट सकते हैं? सभी युगों के नाम का उल्लेख कीजिए। (उत्तर चार पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

(ग) भारतेंदु को आधुनिक हिंदी नाटक का जनक क्यों कहा जाता है?
(उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

(घ) भारतेंदु तथा उनके युग के नाटककारों ने हिंदी नाटक को किस-किस दृष्टि से समृद्ध किया? (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

(ङ) द्विवेदी युग में हिंदी नाटक के विकास की क्या स्थिति थी?
(उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

16.4 प्रसाद युगीन हिंदी नाटक

हम चर्चा कर चुके हैं कि भारतेंदु के बाद काफी समय तक हिंदी नाटक की दिशा वही रही जो भारतेंदु ने निर्धारित कर दी थी। द्विवेदी युग में नाटक कर्म जारी तो रहा किंतु उसकी गति बहुत मंद रही। इसी युग में जयशंकर प्रसाद के आविर्भाव के साथ हिंदी नाटक के क्षेत्र में एक नए युग की शुरूआत होती है जिसका विस्तार बीसवीं सदी के चौथे दशक तक अपूर्व साहित्यिक-सांस्कृतिक उठान के साथ चलता है। भारतेंदु के नाटकों में राष्ट्रीय, सांस्कृतिक, सामाजिक नवजागरण की चेतना की जो झलक दिखाई देती है उसका समग्र, प्रखर और उत्कृष्ट रूप जयशंकर प्रसाद के नाटकों में मिलता है। इतिहास, संस्कृति और दर्शन के गहन अध्ययन और विश्लेषण को आधार बनाते हुए प्रसाद ने उनके द्वारा अपने साहित्य में नई अर्थवत्ता पैदा की। इतिहास का प्रसाद ने बृहत्तर उपयोग किया। अपने नाटक 'विशाख' की भूमिका में उन्होंने लिखा है, "इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति को अपना आदर्श संघटित करने में अत्यंत लाभदायक होता है। मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकांड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने में महत्वपूर्ण योग दिया है।''

इस कथन को प्रसाद की मनोभूमिका की संकल्पबद्ध घोषणा कहा जा सकता है। उनका नाट्य सृजन 1910-1911ई॰ में शुरू हो गया था। 'सज्जन', प्रायश्चित', 'कल्याणी परिणय', 'करुणालय', 'राज्यश्री' आदि वस्तुतः उनके प्रयोग-काल की रचनाएँ हैं। सन् 1921 ई॰ में 'विशाख' के प्रकाशन से हिंदी नाटक के क्षेत्र में नई उद्भावनाओं की शुरूआत होती है। इसके बाद सन् 1933 ई॰ तक का समय 'प्रसाद' के नाट्य लेखन का उत्कर्ष काल है। इसमें 'अजातशत्रु' (1922), 'जनमेजय का नागयज्ञ' (1923 ई॰), 'कामना' (1923-24 ई॰), 'स्कंदगुप्त' (1928 ई॰), 'एक घूँट' (1929 ई॰), 'चंद्रगुप्त' (1931 ई॰), 'ध्रुवस्वामिनी' (1933 ई॰) की रचना हुई।

प्रसाद जी स्वच्छंदतावादी दृष्टि के नाटककार हैं। कथ्य, शिल्प, संवेदना और भाषा, सभी क्षेत्रों में रूढ़ियों के प्रति विद्रोह उनके नाटकों का प्रधान स्वर है। पूर्वी और पश्चिमी नाट्य तत्वों का समन्वय करते हुए उन्होंने अपने लिए एक नई नाट्य-दृष्टि की तलाश की। अपने समय की हर धड़कन को पहचानते हुए उन्होंने सभी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जागरण सुधार आंदोलनों को अपने नाटकों में जीवंत रूप प्रदान किया। देशभक्ति, राष्ट्रोद्धार की भावना, साम्राज्यवादी शोषण का विरोध, नारी जागरण, सामाजिक समता की भावना तथा श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों की

स्थापना उनके नाटकों का प्रबल स्वर है। उनके नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें पात्रों को स्वतंत्र व्यक्तित्व मिला है। इनसे पहले के नाटकों में पात्रों का व्यक्तित्व लेखक से स्वतंत्र नहीं हो पाया था, किंतु जयशंकर प्रसाद के पात्रों को निजी व्यक्तित्व मिला है। महत्वपूर्ण बात यह है कि इन पात्रों का व्यक्तित्व निजी होते हुए भी विश्वजनीन है, क्योंकि उसे मनोवैज्ञानिक आधार मिला है।

भाषा और संवादों की दृष्टि से जयशंकर प्रसाद ने हिंदी नाटक के क्षेत्र में नए प्रयोग किए हैं। ऐतिहासिक-सांस्कृतिक रूप से देशकाल से संबद्ध होने के कारण उनकी नाट्य-भाषा प्रसंगानुकूल संस्कृतनिष्ठ है और आज के पाठक के लिए थोड़ी कठिन होते हुए भी देशकाल की दृष्टि से उपयुक्त तथा पात्रानुकूल है। सभी पात्र गहन-गंभीर, बिंब प्रधान और प्रतीकात्मक भाषा नहीं बोलते। पात्रों की स्थिति, मनोभूमिका और प्रसंग के अनुसार शैली कहीं भाव प्रधान, कहीं व्याख्यापरक, कहीं विश्लेषणपरक और कहीं बोलचाल की रवानी लिए हुए है। संवादों पर प्रसाद के कवि-कथाकार व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है। उनमें एक खास तरह का तार्किक पैनापन और साहित्यिक सुरुचिपूर्णता है।

अभिनेयता की दृष्टि से प्रसाद के नाटक विवाद का विषय रहे हैं। उनकी भाषा, दृश्य-विधान और नाटकीय परिकल्पना पर काफी प्रश्न चिह्न लगाए गए हैं। आरंभ में दो-चार प्रस्तुतियों के बाद लंबे समय तक इन नाटकों को प्रस्तुत नहीं किया गया क्योंकि हिंदी के पास अपना कोई रंगमंच नहीं था। किंतु आज यह स्थिति नहीं है। बीसवीं सदी के छठे दशक से हिंदी में रंगकर्म की पुनः शुरूआत हुई और आज नए रंगकर्मी यह मानने लगे हैं कि जयशंकर प्रसाद के नाटकों में व्यापक रंगमंचीय संभावनाएँ हैं जिनकी तलाश के लिए निर्देशकों और अभिनेताओं की लगन और परिश्रम की आवश्यकता है। हिंदी के प्रमुख निर्देशकों ने उनके कई नाटकों की सफल और प्रभावशाली प्रस्तुतियाँ की हैं।

प्रसाद युगीन अन्य नाटककार

प्रसाद जी के समसामयिक हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने अपने नाटकों में भारत की सांस्कृतिक अखंडता को नए ढंग से प्रस्तुत किया है। मध्यकालीन इतिहास से अपनी कथावस्तु चुनते हुए उन्होंने हिंदू-मुस्लिम एकता को केंद्र में रखा है। 'रक्षाबंधन', 'प्रतिशोध', 'स्वप्न भंग', 'आहुति' जैसे नाटकों की संवाद-योजना तथा चरित्र-योजना में राष्ट्रीय जागरण का स्वर प्रधान है। इनकी भाषा बोलचाल की भाषा के निकट है।

प्रसाद युग के अन्य नाटककारों में सुदर्शन, सेठ गोविंददास, बद्रीनाथ मिश्र, बलदेव प्रसाद मिश्र आदि का नाम लिया जा सकता है। रंगमंच तथा साहित्यिक महत्व के अभाव में इनके द्वारा लिखित नाटकों का सिर्फ ऐतिहासिक महत्व है।

बोध प्रश्न-2

(क) रिक्त स्थानों की पूर्ति सही विकल्प चुनकर कीजिएः

(i) 'प्रसाद' जी ..... दृष्टि के नाटककार हैं। (स्वच्छंदतावादी/यथार्थवादी)

(ii) उन्होंने ..... को अपने नाटकों का आधार बनाया। (इतिहास/धर्म)

(iii) भाषा और संवादों की दृष्टि से उन्होंने ..... किया।
(परंपरा का पालन/नया प्रयोग)

(iv) उनके नाटकों की अभिनेयता ..... रही हैं। (निर्विवाद/विवाद का विषय)

(ख) प्रसाद युगीन नाटकों के कोई चार मुख्य विधायक तत्व बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

(ग) हाँ/नहीं में उत्तर दीजिए :

(i) 'स्कंदगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी', 'चंद्रगुप्त' नाटक प्रसाद के लिखे हुए हैं। हाँ/नहीं

(ii) बाह्य संघर्ष के साथ-साथ पात्रों के मानसिक संघर्ष को प्रस्तुत करने में प्रसाद अक्षम हैं। हाँ/नहीं

(iii) प्रसाद ने हिंदी नाटकों के पात्रों को प्रेम की गहनता तथा मानवीय संवेदना से संपन्न बनाया। हाँ/नहीं

(iv) आरंभ में प्रसाद के नाटकों पर रंगमंचीय दृष्टि से प्रश्न लगाए गए। हाँ/नहीं

16.5 प्रसादोत्तर हिंदी नाटक

प्रसाद युग के बाद हिंदी नाटक के नए युग का प्रारंभ होता है। प्रसादोत्तर काल में नाटक विषय और शिल्प दोनों दृष्टि से और भी अधिक विकसित हुए। यह युग कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। अब राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष में किसान और मजदूर जनता भी शामिल हो गई थी। उनके संगठन बन चुके थे। जीवन में भावना के बजाए बुद्धि का महत्व अधिक हो गया था। आदर्श का स्थान यथार्थ ने ले लिया था। इस युग तक आते-आते रामलीला, नौटंकी आदि का प्रचार काफी कम हो गया। पारसी रंगमंचीय नाटक भी उतने अधिक लोकप्रिय नहीं रह गए थे क्योंकि सिनेमा का प्रभाव जनता पर अधिक पड़ रहा था। ऐतिहासिक नाटक इस काल में भी लिखे गए। राष्ट्रीय भावनाओं और चेतना को अधिक प्रश्रय दिया गया। पौराणिक नाटकों के प्रति जनरुचि कम होती गई और अपने चारों ओर की समस्याओं, समसामयिक विषयों की ओर ध्यान आकृष्ट हुआ। विदेशी साहित्य का अध्ययन करने की प्रवृत्ति बढ़ रही थी। विशेषकर इब्सन, बर्नार्ड शॉ, ओनील आदि का अनुसरण किया जा रहा था। इन नाटककारों ने पश्चिमी देशों के नाटक के क्षेत्र में यथार्थवादी प्रवृत्ति का सूत्रपात किया था। इनके प्रभावस्वरूप हिंदी नाट्य साहित्य में समस्या नाटकों का सूत्रपात हुआ। इसके प्रमुख प्रवर्तक लक्ष्मीनारायण मिश्र थे। मिश्र जी ने लेखन की शुरूआत प्रसाद के समय में ही कर दी थी। उनका नाटक 'संन्यासी' 1930 में आया था। पश्चिम में नाटकों के माध्यम से इब्सन और बर्नार्ड शॉ ने प्रचलित परंपराओं पर चोट कर बौद्धिक क्रांति का बीज बोया था, इस तरह साहित्य में आदर्श और भावना की अपेक्षा यथार्थ और बुद्धि तत्व का प्रवेश हुआ था। हिंदी में इस प्रवृति का आरंभ और बुद्धि तत्व का समावेश लक्ष्मीनारायण मिश्र की देन है।

प्रसाद के समकालीन लेखकों में नए गद्य प्रयोग करने वालों में **लक्ष्मीनारायण मिश्र** का नाम प्रमुख है। प्रसाद की इतिहास दृष्टि और स्वच्छंदतावादी दृष्टि के विरुद्ध बगावत के स्वर में मिश्र जी ने यथार्थवादी बुद्धिवादी नाटकों पर जोर दिया और अंग्रेजी के Problem play' के

अनुकरण पर उन्होंने हिंदी में समस्या नाटकों की रचना की। उनके प्रमुख नाटक हैं 'राक्षस का मंदिर', 'सिंदूर की होली', 'संन्यासी', 'मुक्ति का रहस्य' आदि। समसामयिक समाज की ज्वलंत समस्याओं को प्रस्तुत करने वाले इन नाटकों में भावुकतापरक रोमानी दृष्टि से बचने का भरपूर प्रयास का दावा है। समस्या नाटकों का दृष्टिकोण जीवन की यथार्थवादी चेतना के प्रति भावुक न होकर बुद्धिवादी हो गया। व्यक्ति की समस्या को लेकर प्रथम बार नाटक लिखे गए। फ्रायड के अनुसार व्यक्ति के अंतःस्थल में बंद स्वच्छंद काम चेतना, दमित होने पर व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती है। अतः व्यक्ति की समस्याओं का, उसके अंतर्द्वंद्व का, उलझनों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण नाटकों में आरंभ हुआ। सबसे पहले लक्ष्मीनारायण मिश्र ने ही बुद्धिवाद के द्वारा आज की नई वैयक्तिक समस्याओं का विश्लेषण करना आरंभ किया। 'सिंदूर की होली' (1933 ई·), 'आधी-रात' (1936 ई·), 'राजयोग' (1933 ई·), 'संन्यासी' (1930 ई·), 'राक्षस का मंदिर' (1931 ई·), 'मुक्ति का रहस्य' (1932 ई·) आदि समस्या नाटकों की उन्होंने रचना की। मिश्रजी ने प्रेम विवाह और काम की समस्याओं का प्रतिपादन भी किया है। नारी समस्या को लेकर कई समस्या नाटक लिखे। हम चर्चा कर चुके हैं कि प्रसाद जी ने जिस स्वच्छंदतावादी नाट्य परंपरा की शुरुआत की थी उसके विरुद्ध लक्ष्मीनारायण मिश्र ने बुद्धिवाद का नारा बुलंद किया। किंतु मिश्र जी अपने प्रयोग में बहुत सफल न हो सके और स्वयं पौराणिक नाटकों की ओर लौट पड़े। अपने लेखनकाल के अंतिम दौर में उन्होंने पौराणिक-ऐतिहासिक नाटक भी लिखे। ऐसे कुछ नाटक हैं – 'नारद की वीणा' (1946 ई·), 'चक्रव्यूह' (1953 ई·), 'दशाश्वमेध' (1950 ई·), 'वितस्ता की लहरें' (1953 ई·)। रंग-प्रस्तुति योजना की दृष्टि से भी इस युग में भिन्न दृष्टिकोण अपनाया गया।

सेठ गोविंददास ने सवा सौ से अधिक नाटकों की रचना की है और विषय-वस्तु तथा शिल्प-विधान के क्षेत्र में भी विविध प्रयोग किए हैं। इनके नाटक पौराणिक, ऐतिहासिक और तत्कालीन सामाजिक विषयों से सम्बद्ध हैं। कार्य-व्यापार, नाटकीयता, कौतूहल, भाषा, संवाद आदि की दृष्टि से 'कुलीनता' (1940 ई·) और 'शेरशाह' नामक (1945 ई·) ऐतिहासिक नाटक अपेक्षाकृत प्रभावशाली और सशक्त हैं। अन्य नाटक हैं – 'सुख किस में' (1940 ई·), 'दलित कुसुम' (1942 ई·), 'कर्ण' (1946 ई·), 'भूदान यज्ञ' (1954 ई·) आदि।

उदयशंकर भट्ट (1819–1966 ई·) आधुनिक नाटककारों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। उनके प्रारंभिक नाटकों के कथानक ऐतिहासिक और पौराणिक विषयों से लिए गए हैं। बाद में उन्होंने सामाजिक जीवन की ज्वलंत समस्याओं को लेकर भी नाटक लिखे। उनके गीति नाटक, प्रतीक नाटक, रेडियो रूपक, एकांकी आदि की प्रयोगशीलता दर्शनीय है। उनके कुछ प्रमुख नाटक हैं – 'विद्रोहिणी अम्बा' (1935 ई·), 'सागर विजय' (1937 ई·), 'दाहर' (1933 ई·)। तीन गीति नाट्य हैं – 'मत्स्यगंधा' (1937 ई·), 'विश्वामित्र' (1938 ई·), 'राधा' (1941 ई·)। 'कमला' (1939 ई·) उनका समस्या नाटक है। इसमें आधुनिक समाज की उलझनों और मानव चरित्र की जटिलताओं का अंकन हुआ है।

डॉ रामकुमार वर्मा (1905 ई·) मूलतः एकांकीकार हैं लेकिन उन्होंने कुछ नाटकों की भी रचना की है। 'विजय पर्व (1956 ई·), 'नाना फड़नवीस' (1964 ई·), 'सारंगस्वर' (1970 ई·) उनके ऐतिहासिक और 'पृथ्वी का स्वर्ग' (1971 ई·) सामाजिक नाटक हैं।

उपेंद्रनाथ अश्क हिंदी के प्रसिद्ध नाटककार हैं। उनके नाटकों का रचनाकाल 1937 ई· से आरंभ होता है। अश्क जी ने एक ओर हिंदी नाटक और रंगमंच को आधुनिक शिल्प-विधान से सुसज्जित किया, तो दूसरी ओर सामाजिक और व्यक्तिगत समस्याओं का मनोवैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत कर नाटक को वर्तमान-जीवन से जोड़ा। इनके सामाजिक नाटकों में मध्यवर्गीय समाज की रूढ़ियों, परंपराओं, उच्च-मध्यवर्गीय परिवारों के खोखलेपन, विषमताओं,

यौन कुंठाओं, घुटन, असंतोष, शिक्षित युवक-युवतियों के असंतुलित दांपत्य जीवन आदि का मनोवैज्ञानिक और यथार्थपरक विश्लेषण किया गया है। 'भंवर' वैयक्तिक समस्या नाटकों की श्रेणी में आता है। यह नाटक नाटककार के चरित्र-मनोविज्ञान के गूढ़ अनुभव से निर्मित हुआ है।

तकनीक की दृष्टि से अश्क जी के नाटकों में पर्याप्त विविधता है। उन्होंने समय-समय पर अनेक नए प्रयोग किए हैं। 'छठा बेटा' स्वप्न नाटक के रूप में, 'कैद' (1945 ई॰) लघु नाटक, 'अंजो दीदी' मनोवैज्ञानिक नाटक और 'पैंतरे' फिल्मी झाँकी के रूप में उल्लेखनीय हैं। अश्क जी उत्कृष्ट नाटककार होने के साथ ही सफल अभिनेता और निर्देशक भी थे। इसी कारण उनके नाटकों में विस्तृत रंग-निर्देश प्राप्त होते हैं। उनके अनेक नाटक मंचित तथा रेडियो पर प्रसारित हो चुके हैं। अश्क जी का योगदान हिंदी नाटक और रंगमंच के लिए विशेष उपलब्धि है।

हिंदी नाटक के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रस्थान बिंदु **धर्मवीर भारती** के काव्य नाटक 'अंधा युग' (1955 ई॰) के साथ आया। कविता और नाटक के बीच गहरे रिश्ते को इसने पहली बार रंगमंच पर सिद्ध किया। 'अंधा युग' के अनेक सफल प्रदर्शन हुए। इसी से प्रेरित होकर दुष्यंत कुमार ने 'एक कंठ विषपायी' (1963) नामक काव्य नाटक लिखा। सुमित्रानंदन पंत ने भी कई काव्य नाटक लिखे जिसमें 'शिल्पी' अधिक प्रसिद्ध हुआ।

भुवनेश्वर प्रसादोत्तर नाटकों में कथ्य और शिल्प दोनों की ही दृष्टि से गुणात्मक परिवर्तन करने वाले नाटककार हैं। प्रसाद के अंतिम नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' के प्रकाशन के समय ही भुवनेश्वर के 'श्यामा' 'प्रतिभा' और 'विवाह', 1933 ई॰ में आ गए थे। बाद में 'शैतान' (1939 ई॰), 'रोमांस, रोमांच' (1935 ई॰) तथा एकांकी संकलन 'कारवाँ' (1936 ई॰) आया। स्त्री-पुरुष संबंधों को लेकर कई तरह के मनोवैज्ञानिक प्रश्नों का सूत्रपात इन नाटकों में होता है।

मोहन राकेश नाटक और रंगमंच के रिश्ते को पहचानते हुए सार्थक नाट्य सृजन करने वालों में प्रमुख नाम है । इतिहास, कविता और नाटक के बीच सामंजस्य स्थापित करते हुए गहन मानवीय भावों की सार्थक अभिव्यक्ति की जो परंपरा जयशंकर प्रसाद ने शुरू की थी तथा स्वाभाविकता, नाटकीयता, यथार्थपरकता और काव्यात्मकता का जो मिश्रण जगदीशचंद्र माथुर ('कोणार्क') ने किया था उसका अगला चरण मोहन राकेश के नाटकों में मिलता है। 'आषाढ़ का एक दिन' (1958 ई॰), 'लहरों के राजहंस' (1963 ई॰) तथा 'आधे अधूरे' ने हिंदी नाटक और रंगमंच को विस्तृत आयाम दिया। जीवन की गहन मार्मिक अनुभूतियों के तीखे बोध को अतीत और वर्तमान में एक साथ तलाश करने का सार्थक प्रयास हिंदी नाटक में पहली बार इतनी सफलतापूर्वक किया गया। समसामयिक जीवन स्थितियों की कशमकश और विसंगतियों को व्यक्त करने वाले उनके नाटक 'आधे अधूरे' ने हिंदी नाटक को नया मुहावरा देते हुए हिंदी रंगमंच को नया दर्शक वर्ग प्रदान किया।

इसी समय **लक्ष्मीनारायण लाल** ने नाट्य लेखन और नाट्य संचालन (प्रदर्शन और प्रशिक्षण) के क्षेत्र में सक्रिय भूमिका आरंभ की। भारतेंदु के बाद एक बार फिर नाटक और रंगकर्म एक-दूसरे से व्यावहारिक रूप से जुड़े। उनके नाटकों में 'अंधा कुआँ', 'तीन आँखों वाली मछली', 'मादा कैक्टस', (1959 ई॰) 'तोता मैना', 'रात रानी', 'मिस्टर अभिमन्यु', 'दर्पण' आदि प्रमुख हैं।

रंगमंच के इस नए आंदोलन ने **विष्णु प्रभाकर** को भी प्रभावित किया। सन् 1958 में 'डॉक्टर' नामक मौलिक नाटक के लेखन के बाद उन्होंने विभिन्न महत्वपूर्ण उपन्यासों और कहानियों के नाट्य रूपांतर प्रस्तुत किए। इनमें प्रेमचंद के 'गबन' और 'गोदान' के नाट्य रूपांतर 'चंद्रहार' और 'होरी' तथा प्रभातकुमार मुखोपाध्याय की बंगला कहानी 'देवी' का नाट्य

रूपांतर 'देवी' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आगे चलकर उपन्यासों के नाट्य रूपांतर का यह सिलसिला हिंदी में तेजी से बढ़ा। प्रेमचंद, जैनेंद्र, हजारीप्रसाद द्विवेदी, मनोहरश्याम जोशी, अमृतलाल नागर, मन्नू भंडारी, कृष्ण बलदेव वैद आदि के उपन्यासों के सफल नाट्य रूपांतरों ने हिंदी रंगमंच को समृद्ध किया है।

साठ-सत्तर के दशक में हिंदी रंगकर्म में क्रांति की लहर आई और नाट्य लेखन का सिलसिला बना। इस दौर के महत्वपूर्ण नाटक लेखकों और उनकी प्रमुख कृतियों में विनोद रस्तोगी का 'नए हाथ', नरेश मेहता का 'सुबह के घंटे' और 'खंडित यात्राएँ', लक्ष्मीकांत वर्मा का 'खाली कुर्सी की आत्मा', 'रोशनी एक नदी है', शिवप्रसाद सिंह का 'घाटियाँ गूँजती हैं', मन्नू भंडारी का 'बिना दीवारों का घर', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'बकरी', मुद्राराक्षस का 'तिलचट्टा', 'इकतारे की आँख', शंकर शेष का 'एक और द्रोणाचार्य', 'पोस्टर', भीष्म साहनी का 'हानूश', 'मुआवजे' तथा 'कबिरा खड़ा बाजार में', सुरेन्द्र वर्मा का 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक', 'आठवाँ सर्ग', मणि मधुकर का 'रस गंधर्व', 'दुलारी बाई' रेवतीशरण शर्मा का 'चिराग की लौ' ज्ञानदेव अग्निहोत्री का 'नेफा की एक शाम', प्रभात कुमार भट्टाचार्य का 'काठ महल', ब्रजमोहन शाह का 'त्रिशंकु', 'शह ये मात', हबीब तनवीर का 'आगरा बाजार', 'चरणदास चोर', दया प्रकाश सिन्हा का 'कथा एक कंस की', सुशील कुमार सिंह का 'सिंहासन खाली है', रामेश्वर प्रेम का 'चारपाई' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

बोध प्रश्न-3

(क) निम्नलिखित प्रसादोत्तर हिंदी नाटकों के लेखकों का नाम बताइए

(i) मुक्ति का रहस्य .....

(ii) शेरशाह .....

(iii) मत्स्यगंधा .....

(iv) एक कंठ विषपायी .....

(v) लहरों के राजहंस .....

(ख) समस्या नाटक से आप क्या समझते हैं, हिंदी में इसके जनक कौन हैं? उनके कुछ प्रमुख समस्या नाटको के नाम बताइए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

16.6 नाटक के अन्य रूप

आधुनिक हिंदी नाट्य साहित्य नए-नए प्रयोगों का सहित्य है। हिंदी नाटक में जहाँ वस्तुगत नवीन उपलब्धियाँ हुई हैं, वहीं उसमें शैली-शिल्प के नए प्रयोग भी हुए हैं। हिंदी नाटक ने

पाश्चात्य दृष्टिकोण और तकनीक को भी अपनाया है और अपने आपको बदलते हुए खुद को युग-जीवन के अनुरूप ढालकर समृद्ध किया है। आज का हिंदी नाटककार यह अच्छी तरह अनुभव कर रहा है कि जीवन की नित्य प्रतिदिन की झाँकी, मानव चरित्र की झलक, स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत करना कितना आवश्यक है। इस स्वाभाविकता को लाने, मानव-जीवन की विविधता-विषमता को अभिव्यक्ति देने और हिंदी नाटकों को रंगमंचीय बनाने के लिए नाटकों के रचना-विधान में परिवर्तन आया। इन नए प्रयोगों को इन रूप में देखा जा सकता है :

(i) गीति नाट्य

(ii) एकांकी

(iii) रेडियो नाटक और

(iv) नुक्कड़ नाटक।

आगे इनके बारे में विस्तृत जानकारी दी जा रही है।

16.6.1 गीति नाट्य/काव्य नाटक

हिंदी नाट्य साहित्य में गीति नाट्य एक नया प्रयोग है, यह एक ऐसी नई विधा है जिसमें गीति तत्व होने के साथ भावना की तथा अंतःसंघर्ष की प्रमुखता रहती है। इसमें काव्य तत्व का प्रयोग अनुभूति की तीव्रता लाने के लिए होता है। जयशंकर प्रसाद का 'करुणालय' (1913 ई॰) हिंदी का पहला गीति नाट्य है। यह बंगला के गीतिनाट्य से प्रभावित है।

प्रसाद जी ने 'करुणालय' की रचना करके हिंदी गीति नाट्य परंपरा की भी शुरूआत की थी। इस युग में मैथिलीशरण गुप्त ने 'अनघ', उदय शंकर भट्ट ने 'विश्वामित्र', 'राधा', 'मत्स्यगंधा' आदि तथा सियारामशरण गुप्त ने युद्ध की समस्या को लेकर 'उन्मुक्त' नामक श्रेष्ठ गीति नाट्य की रचना की।

भट्ट जी के गीति नाट्यों में उनकी काव्यकला, नाटकीय संघर्ष और प्रतीकात्मकता का सुंदर समन्वय मिलता है। भट्ट जी के गीति नाट्यों में 'अशोक वन वंदिनी', 'संत तुलसीदास', 'गुरु द्रोण का अंतर्निरीक्षण', 'अश्वत्थामा' और 'नहुष निपात' भी उल्लेखनीय हैं। वस्तुतः इस काल में गीति नाट्य के सर्वप्रमुख लेखक भट्ट जी ही हैं।

सुमित्रानंदन पंत के गीति नाट्य 'शिल्पी', 'रजत शिखर' और 'सौवर्ण' में संग्रहीत हैं। सेठ गोविंददास कृत 'स्नेह या स्वर्ग' (1946 ई॰) यूनान के एक पौराणिक आख्यान पर आधारित है। सिद्धनाथ कुमार के पाँच गीति नाट्य 'सृष्टि की सांझ और अन्य काव्य नाटक' में संग्रहीत हैं। ये काव्य नाटक हैं – 'सृष्टि की साँझ', 'लौहदेवता', 'संघर्ष', विकलांगों का देश' और 'बादलो का शाप'।

काव्य नाटकों की परंपरा में डॉ॰ धर्मवीर भारती के योगदान का विशेष महत्व है। उनके 'अंधा युग' (1955 ई॰) काव्य नाट्य ने हिंदी काव्य नाट्य परंपरा को एक नया मोड़ दिया। यह पहला नाटक है जो अधिक सफलतापूर्वक विभिन्न रंगमंच तथा रंगशालाओं में अभिनीत तथा रेडियो पर प्रसारित हो चुका है। पहली बार इसमें नाटक और काव्य की विशेषताओं का समन्वय दिखाई देता है। धर्मवीर भारती ने महाभारत की कथा को आधार बनाया है। इस कथा के माध्यम से वैचारिक, राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं को प्रतिपादित किया गया है। दुष्यंत कुमार का 'एक कंठ विषपायी' (1963 ई॰) भी इसी परंपरा का काव्य नाट्य है। गिरिजा

कुमार माथुर द्वारा रचित 'पृथ्वी कल्प' (1960 ई॰) में भी मानव मूल्यों के विघटन का चित्रण किया गया है।

'संशय की एक रात' (1962 ई॰) नरेश मेहता का काव्य नाट्य है। इसका मूल आधार राम के हृदय में उत्पन्न यह संशय है कि रावण द्वारा अपहृता सीता के लिए युद्ध करें या न करें। युद्ध के पक्ष-विपक्ष में नरेश मेहता ने अनेक तर्क प्रस्तुत किए हैं। राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा के लिए युद्ध की अनिवार्यता पर बल दिया गया है। जहाँ तक शिल्प का प्रश्न है, वह विस्तृत और संश्लिष्ट होने के कारण नाटकीय गति और सौंदर्य में बाधक है। 'उत्तर प्रियदर्शी (1967 ई॰) अज्ञेय द्वारा रचित काव्य-नाट्य है। इसका कथानक ऐतिहासिक-सांस्कृतिक है। यह जापान की नोह नाट्य शैली से प्रभावित है। अतः इसमें प्रतीकात्मकता का समावेश और कार्य-व्यापार की सूक्ष्मता है।

भारतभूषण अग्रवाल कृत गीति नाट्य 'अग्निलीक (1976 ई॰) में सीता निर्वासन का प्रसंग लिया गया है। राम एक परंपरा पूजक, पुरातनपंथी के रूप में और सीता एक शोषित, उत्पीड़ित, तर्कशीला, सहज नारी के रूप में चित्रित है । सीता के बलिदान से राम के हृदय पर अग्निलीक अंकित हो जाती है और उनका जीवन-दर्शन बदल जाता है। अभिनेयता की दृष्टि से यह सफल नहीं कहा जा सकता।

डॉ॰ लक्ष्मीनारायण लाल कृत 'सूखा सरोवर' एक लोकगाथा पर आधारित गीति नाटक है। इसमें शासक के सत्तालोलुप और कर्त्तव्य के विघटन की समस्या को प्रतीकों के माध्यम से दर्शाया गया है।

16.6.2 हिंदी एकांकी

नाट्य-इतिहास के आधुनिक युग में एकांकी एक स्वतंत्र नाट्य विधा के रूप में विकसित हुआ। इसकी विशेषताएँ हैं :

(i) सम्पूर्ण नाटक की एक ही अंक में समाप्ति।
(ii) एक खंड, स्थिति या संवेदना का प्रस्तुतीकरण।
(iii) एक ही मूल कथानक।
(iv) कथा के प्रभाव की सघनता और तीव्रता।
(v) पात्र संख्या कम तथा गौण पात्र नगण्य।
(vi) स्थान, कार्य और समय की एकता।

भारतेंदु हरिश्चंद्र के 'अंधेर नगरी', 'विषस्यविषमौषधम्', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' आदि नाटक एक अंक में समाप्त होने वाली रचनाएँ हैं। बद्रीनाथ भट्ट का 'रेगड़ समाचार के एडीटर की धूल दच्छिना', रूप नारायण पांडेय का 'मूर्ख मंडली', बेचन शर्मा उग्र का 'चार बेचारे', सुदर्शन का 'आनरेरी मजिस्ट्रेट' आदि भी एक अंकीय नाट्य कृतियाँ हैं। इन लघु नाटकों में प्राचीन परंपरा का प्रभाव भी दिखाई पड़ता है। किंतु आज हम जिसे एकांकी नाटक कहते हैं, उसका स्वरूप इस परंपरा से बहुत भिन्न है।

हिंदी एकांकी का प्रारंभ जयशंकर प्रसाद के 'एक घूँट' (1929 ई॰) से माना जाता है। इसमें एकांकी की तकनीक का पूरा निर्वाह किया गया है। हिंदी में पाश्चात्य एकांकी के शिल्प से प्रभावित एकांकी नाटकों की रचना 1930 के दशक से होने लगी। हिंदी एकांकी परंपरा को विकसित करने का श्रेय डॉ॰ रामकुमार वर्मा को दिया जाता है। उनका पहला एकांकी 'बादल की मृत्यु' 1930 ई॰ में प्रकाशित हुआ। इसके बाद वे निरंतर एकांकी रचना करते रहे।

एकांकी नाटक की सामान्य प्रवृत्तियाँ

हिंदी एकांकी का उदय उस समय हुआ जब देश में स्वतंत्रता आंदोलन पूरी तरह जोरों पर था। एकांकी की विषय-वस्तु भी अन्य साहित्यिक विधाओं की भाँति अपने समय की आवश्यकताओं से प्रेरित थी। इस दौर के एकांकी नाटकों में भी देशप्रेम, राष्ट्रीय भावना और समाज सुधार आदि को विषय बनाया गया था। इसके लिए ऐतिहासिक कथानकों का सहारा लिया गया। दूसरी ओर सामाजिक समस्याओं के लिए तत्कालीन सामाजिक यथार्थ को विषय बनाया गया। इतिहास आधारित एकांकी नाटकों में प्राचीन इतिहास और साहित्य के उन प्रसंगों को चुना गया है जिनसे देश की प्राचीन गरिमा का पता लगे तथा साहस, बलिदान, शौर्य और त्याग जैसे सद्‌गुणों से जन-मानस उद्वेलित हो सके। रामकुमार वर्मा के 'शिवाजी', 'औरंगजेब की आखिरी रात', 'चारुमित्रा', 'विक्रमादित्य', 'पृथ्वीराज की आँखें', जगदीश चंद्र माथुर के 'कलिंग विजय', डॉ॰ सत्येंद्र के 'कुणाल', चतुरसेन के 'पन्नाधाय', 'हाड़ा रानी', तथा हरिकृष्ण प्रेमी कृत 'मान का मंदिर' और 'मालव प्रेम' आदि एकांकी नाटकों में इतिहास के उन प्रसंगों को कथानक का विषय बनाया गया जो तत्कालीन परिस्थितियों में राष्ट्रीय चेतना को मजबूत बना सकें।

चौथे और पाँचवें दशक में समस्यामूलक हिंदी एकांकी नाटक अधिक लिखे गए। इन एकांकियों में युगीन समस्याओं को प्रस्तुत करके उनके समाधान भी खोजे जाने लगे थे। पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित भारतीय समाज में नई समस्याएँ उठ खड़ी हुई। एक ओर प्राचीन रूढ़ियों और मान्यताओं के प्रति विद्रोह भाव जाग रहा था तो दूसरी ओर नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व, प्रेम और विवाह की समस्याएँ तथा विकृत कुंठाएँ समाज और व्यक्ति को घेरने लगी थीं। यद्यपि 1936 ई॰ में भुवनेश्वर का 'कारवाँ' एकांकी संग्रह प्रकाशित हो चुका था जिसमें समाज की कुंठाजन्य विकृतियों और यौन समस्या को उभारा गया था। भुवनेश्वर पर इब्सन और बर्नार्ड शॉ का प्रभाव पड़ा। भुवनेश्वर सर्वथा नई तकनीक और दृष्टि लेकर हिंदी एकांकी के क्षेत्र में आए। राष्ट्रीय आंदोलन और गांधीवादी विचारधारा के प्रभाव से अहिंसा, सांप्रदायिकता, जाति उत्थान जैसी समस्याओं के समाधान में भी एकांकी नाटकों का सृजन किया गया।

इस युग के एकांकीकारों ने समाज की सूक्ष्म कमजोरियों को देखा, समझा, पहचाना और उसका समाधान प्रस्तुत किया। उदयशंकर भट्ट ने 'सेठ लाभचंद', 'दस हजार', 'उन्नीस सौ पैंतीस' आदि एकांकियों में मध्यवर्गीय बाह्य आडंबरों पर चोट की है। 'नेता' एकांकी में उन्होंने स्वार्थी राजनीतिक व्यक्तियों पर गहरा व्यंग्य किया है। उपेंद्रनाथ अश्क ने अपने 'जोंक', 'तौलिये', 'सूखी डाली' जैसे एकांकियों में मध्यवर्गीय परिवारों के पात्रों की मनोवैज्ञानिक और आर्थिक-सामाजिक स्थितियों को हास्य-व्यंग्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है। भगवतीचरण वर्मा कृत 'सबसे बड़ा आदमी' में भी इसी का चित्रण है। नए और पुराने संस्कारों का टकराव अश्क कृत 'सूखी डाली' और उदय शंकर भट्ट कृत 'बीमार का इलाज' एकांकियों में दिखाई पड़ता है।

राजनीति के क्षेत्र में चुनाव पद्धति से उत्पन्न विकृतियों को अश्क के 'अधिकार का रक्षक' एकांकी में चित्रित किया गया है। इस तरह युगीन समस्याएँ केवल प्रेम और विवाह से ही जुड़ी हुई नहीं हैं, वरन् नई-पुरानी विचारधारा के संघर्ष, व्यक्ति की स्वतंत्रता, टूटते संयुक्त परिवार, राजनीति, मजदूर आंदोलन आदि विविध विषयों से संबंधित हैं।

इस युग के एकांकी नाटकों में कथानक स्थूल से निरंतर सूक्ष्म की ओर अग्रसर हुए हैं। मनोद्वंद्व के सूक्ष्म चित्रण के साथ ही एकांकियों के शिल्प में सांकेतिकता को महत्व मिलने लगा। गणेश प्रसाद द्विवेदी के 'सुहाग बिंदी', 'दूसरा उपाय ही क्या है', 'वह फिर आयी थी'

आदि एकांकी नाटकों में नारी और पुरुष मन की गहराई का चित्रण मिलता है और शिल्प की बारीकी के दर्शन होते हैं।

एकांकी में जैसे-जैसे कथानक और शिल्प में बारीकी आती गई, वैसे-वैसे आदर्श के स्थान पर यथार्थवादी प्रवृत्तियाँ अधिक उभरकर सामने आती गईं। चंद्रगुप्त विद्यालंकार के 'मनुष्य की कीमत', 'भेड़िये', 'नव प्रभात' आदि एकांकियों में समाज और राष्ट्र की विविध समस्याओं का अंकन यथार्थवादी ढंग से किया गया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिंदी एकांकी निरंतर विकास की ओर अग्रसर है। इस काल के कुछ एकांकी नाटकों में इतिहास पर आधारित कथानक लिए गए। इन कथानकों का उद्देश्य इतिहास के तथ्यों को ही प्रकट करना नहीं था, वरन् इतिहास के माध्यम से वर्तमान संदर्भों को प्रस्तुत करना था। डॉ॰ लक्ष्मीनारायण लाल के 'ताजमहल के आँसू', 'जहाँनारा का स्वप्न', 'नूरजहाँ की एक रात', 'वरुण वृक्ष का देवता' आदि एकांकी नाटकों में प्रतिशोध, करुणा आदि का मनोविश्लेषण मिलता है। विनोद रस्तोगी मध्यकालीन इतिहास द्वारा नारी के शौर्य और बलिदान की गौरवगाथा प्रस्तुत करते हैं, जैसे 'आज मेरा विवाह है', 'जाह्नवी विजय', 'कसम कुरान की', 'काला दाग', 'दो चाँद' आदि।

हिंदी एकांकी ने रंगमंच को भी एक कलात्मक रूप दिया। जगदीश चंद्र माथुर ने 'रीढ़ की हड्डी', 'भोर का तारा', 'मकड़ी का जाला' आदि के माध्यम से सामाजिक रूढ़ियों, मनोवैज्ञानिक जटिलताओं और साहित्यकार के दायित्व को रेखांकित किया। विष्णु प्रभाकर, मोहन राकेश और सत्येंद्र शरत के एकांकी नाटकों में समाज की विद्रूपताओं और समस्याओं का गहरा अंकन मिलता है। मोहन राकेश कृत 'अंडे के छिलके' एकांकी में पुरानी और नई पीढ़ी के जीवन-मूल्यों की टकराहट को दर्शाया गया है तथा मानव मन की ग्रंथियों और कुंठाओं को खोला गया है। विष्णु प्रभाकर कृत 'ये रेखाएँ ये दायरे' एकांकी में परिवार नियोजन की समस्या उठाई गई है तथा 'आँचल और आँसू' में बहुपतित्व की समस्या पर प्रकाश डाला गया है। सेक्स के विकृत रूप को लेकर भी कई एकांकी रचे गए हैं। सत्येंद्र शरत के 'गुडबाई अनीता', 'एस्फोडेल' और 'प्रतिशोध' में काम समस्या और उससे उत्पन्न तनाव का चित्रण मिलता है। राजनीतिक गुटबंदी और शासन-तंत्र के खोखलेपन को लेकर भी कई एकांकी नाटक रचे गए। विष्णु प्रभाकर का 'कांग्रेस मैन बनो', राजेंद्र कुमार शर्मा के 'अफसर और 'एक दिन की छुट्टी' एकांकी इसी तरह के हैं।

आज का हिंदी एकांकी नाटक प्रयोगशील है। इसमें कथ्य, रंगमंचीय शिल्प, संघर्ष, संवाद पात्रों के मनोविश्लेषण आदि से संबंधित नए-नए प्रयोग किए गए हैं। आज का एकांकी नाटक मंच की अपेक्षा करके चलता है। इसमें प्रकाश और रंग संयोजन की कुशलता की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

16.6.3 रेडियो नाटक

रेडियो के अस्तित्व में आ जाने के बाद नाटक दर्शक के साथ श्रोता के लिए भी लिखा जाने लगा। रेडियो माध्यम की विशेषता ही यही है कि इसके सहारे नाटक के पास श्रोताओं को पहुँचने की आवश्यकता नहीं पड़ती, वरन् नाटक स्वयं ही श्रोताओं के पास पहुँच जाता है। रेडियो नाटक आँखों से देखा तो नहीं जाता, कानों से सुना जाता है। इसीलिए रेडियो नाटकों में अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त साधन है ध्वनि। रेडियो नाटक की कथा इस तरह रची जाती है कि उसकी सफल अभिव्यक्ति भाषा, ध्वनि और संगीत के द्वारा हो सके। रेडियो नाटक की कथा ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, रहस्यात्मक, काल्पनिक आदि सभी

प्रकार की होती है। स्वगत कथन, फ्लैश बैक, स्वप्न-दृश्य आदि रेडियो नाटक में आसानी से आ सकते हैं।

यद्यपि रेडियो के माध्यम से नाटकों का प्रसारण बहुत समय से होता रहा है, पर रेडियो नाटकों का स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही विकास हुआ है। रेडियो से प्रसारित होने वाला पहला हिंदी नाटक चतुरसेन शास्त्री का 'राधाकृष्ण' (1937 ई॰) माना जाता है। विष्णु प्रभाकर भी रेडियो नाटक के शुरूआती लेखकों में से एक हैं। 1947 ई॰ से पहले के रेडियो नाटकों में विषय की दृष्टि से पुराण, इतिहास और रोमांस की प्रधानता रही। इनका उद्देश्य केवल हल्का मनोरंजन था। 1940 ई॰ से उपेन्द्रनाथ अश्क ने रेडियो के लिए लिखना प्रारंभ किया। उनके अनेक प्रसिद्ध एकांकी पहले रेडियो पर ही प्रसारित हुए। 1941 ई॰ से शिवदान सिंह चौहान, चंद्रकिरण सौनरेक्सा तथा चिरंजीत की रचनाएँ भी रेडियो से प्रसारित होने लगीं। कुछ वर्षों बाद गिरिजाकुमार माथुर ने भी रेडियो के लिए लिखना प्रारंभ कर दिया। रेडियो नाटक के इसी प्रारंभिक दौर में चंद्रकिशोर जैन का रेडियो नाटक 'विषकन्या' बहुत प्रसिद्ध हुआ।

प्रारंभिक रेडियो नाटकों का विषय इतिहास, सामाजिक जागरण, राष्ट्र निर्माण और सांस्कृतिक उत्थान रहा। कल्पना, आदर्श और सुधार की प्रवृत्तियाँ रेडियो नाटक का मुख्य अंग बनीं।

16.6.4 नुक्कड़ नाटक

नुक्कड़ नाटक आधुनिक युग की देन है। भारत में नुक्कड़ नाटक के उदय का श्रेय 'इप्टा– (भारतीय जननाट्य संघ – इंडियन पीपुल्स थियेटर एसोसिएशन) को है। सन् 1936 ई॰ में प्रगतिशील लेखक संघ के प्रोत्साहन से इप्टा ने जन-साधारण की समस्याओं, भावनाओं को नाटकों में वाणी दी और अपना पहला प्रदर्शन 1942 ई॰ में जनता के बीच जाकर किया।

दरअसल भारत में रंगमंच (थियेटर) बड़े शहरों में ही पाए जाते हैं और सर्वसाधारण का उन तक पहुँचना आसान नहीं होता। रंगमंचीय नाटक में तमाम व्यवस्थाएँ करनी पड़ती हैं, जैसे – लाइटिंग व्यवस्था, वेशभूषा, मेकअप आदि। नाटक के प्रचार-प्रसार के कार्य में काफी मेहनत, समय और पैसे की आवश्यकता होती है। इन परेशानियों को देखते हुए आम जनता तक नाटक पहुँचाने के उद्देश्य से नुक्कड़ नाटक का उदय हुआ। इस तरह के नाटकों के प्रदर्शन के लिए किसी विशेष रंगमंच की आवश्यकता नहीं होती। सार्वजनिक पार्क, बाजार, बस स्टॉप, गली-मोहल्ले और औद्योगिक क्षेत्र नुक्कड़ नाटक की रंगशालाएँ बन जाते हैं। इन रंगशालाओं के लिए बहुत अधिक पैसा नहीं चाहिए। लाइटिंग व्यवस्था, मेकअप, वेशभूषा आदि की भी कोई आवश्यकता नहीं होती। कथ्य और आंगिक, वाचिक अभिनय ही इनकी प्रमुख शक्ति होता है। ये नाटक दिन में भी खेले जा सकते हैं। हाँ, केवल जनता के प्रति प्रतिबद्ध कलाकार ही इस क्षेत्र में आगे आने का साहस कर सकते हैं।

इस तरह जनता की भावनाओं को अभिव्यक्ति देने वाले लोकप्रिय माध्यम के रूप में नुक्कड़ नाटक का उदय हुआ है। कई राज्यों में यह किसानों, छात्रों, मेहनतकश गरीब तबके के लोगों की आवाज के साथ आवाज मिलाने के माध्यम के रूप में उभरा है। भारतीय नुक्कड़ नाटक प्राचीन नाटकों, लोक-नाटकों और पश्चिमी रंगमंच से समान रूप से प्रभाव ग्रहण करता रहा है। आज के नुक्कड़ रंगकर्मी इसके विशिष्ट आकारगत स्वरूप के बारे में अधिक सजग हैं। वे अब एक अभिनय शैली, नाटकीय संरचना, लेखन, प्रशिक्षण, संगीत, काव्य और समूहगान आदि सभी क्षेत्रों में नए-नए प्रयोग कर रहे हैं।

आम जनता की रोजमर्रा की समस्याओं को उठाने की वजह से तथा जीवंतता और अनौपचारिक रूप के कारण इसने काफी लोकप्रियता हासिल की है। आज कई शौकिया

नुक्कड़ नाट्य दल सामने आ चुके हैं, जो खुद सामूहिक रूप में अपने नाटक लिख रहे हैं या दूसरे क्षेत्रों और भाषाओं की रचनाओं का खुलकर रूपांतर और अनुवाद कर रहे हैं। नुक्कड़ नाटक के विकास की बात की जाए तो हिंदी का पहला नुक्कड़ नाटक सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'बकरी' माना जाता है। सत्तर के दशक में इस नाटक की देश के विभिन्न भागों में प्रस्तुतियों ने हिंदी रंगकर्म को व्यापक लोकप्रियता दिलाई और दर्शकों में अपने परिवेश की विडंबनापूर्ण स्थितियों-परिस्थितियों के प्रति जागरूकता प्रदान की। नुक्कड़ नाटक के लेखन की दृष्टि से सफदर हाशमी, असगर वजाहत, रमेश उपाध्याय, स्वयं प्रकाश, गुरुशरण सिंह, शिवराम और राजेश जोशी का योगदान सराहनीय है। रमेश उपाध्याय का 'राजा की रसोई' और 'गिरगिट' (चेखब की कहानी का रूपांतरण), शिवराम का 'जनता पागल हो गई है' तथा गुरुशरण सिंह का 'जंगीराम की हवेली' नाटक काफी चर्चित हुए और कई बार खेले गए। जन नाट्य मंच, नई दिल्ली के नुक्कड़ नाटकों से सफदर हाशमी जुड़े रहे। उनके नाटकों में उल्लेखनीय हैं – 'मशीन' (1978 ई॰), 'गाँव से शहर तक' (1978 ई॰), 'राजा का बाजा' (1979 ई॰), 'अपहरण भाईचारे का' (1986 ई॰), और 'हल्ला बोल'। रंगमंच को जनता से जोड़ने और राजनीतिक-सामाजिक सवालों को उठाने में नुक्कड़ नाटक ने क्रांतिकारी भूमिका अदा की। अकेले जन नाट्य मंच के बारे में ही प्रसिद्ध है कि पिछली सदी के अंतिम दशक तक इसने अलग-अलग शहरों में नाटकों की 4300 प्रस्तुतियाँ कीं जिन्हें 25 लाख से ऊपर दर्शकों ने देखा। ऐसे समय में जब सामुदायिक मनोरंजन के सभी रूप तेजी से गायब होते जा रहे हैं, नुक्कड़ नाटक ऐसी कला को पुनर्जीवित कर रहा है, जिसका आनंद ढेर सारे दर्शक उठा सकते हैं।

बोध प्रश्न-4

(क) गीति नाट्य की कोई तीन प्रमुख विशेषताएँ बताइए। (उत्तर तीन पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

(ख) कोई ऐसे चार विषय बताइए जिन्हें एकांकी नाटकों में विशेष स्थान दिया गया हो।

.....

.....

.....

(ग) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर हाँ/नहीं में दीजिए।

(i) रेडियो नाटक स्वयं श्रोताओं तक पहुँचता है। हाँ/नहीं

(ii) रेडियो नाटक की अभिव्यक्ति भाषा, ध्वनि और संगीत के द्वारा होती है। हाँ/नहीं

(iii) रेडियो नाटक की शुरुआत स्वतंत्रता के बाद हुई। हाँ/नहीं

(iv) नुक्कड़ नाटक के उदय का श्रेय 'इप्टा' को जाता है। हाँ/नहीं

(v) नुक्कड़ नाटक के लिये विशेष रंगमंच की आवश्यकता होती है। हाँ / नहीं

(vi) जन-जन तक नाटक पहुँचाने और उसके माध्यम से उनकी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए नुक्कड़ नाटक का अविर्भाव हुआ। हाँ / नहीं

(घ) प्रसादोत्तर हिंदी रंगमंच की पाँच प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

(ङ) निम्नलिखित नाटकों के लेखकों के नाम बताइए :

(i) अंजोदीदी .....

(ii) कोणार्क .....

(iii) आषाढ़ का एक दिन .....

(iv) मादा कैक्टस .....

(v) मुआवजे .....

(च) निम्नलिखित व्यक्ति किस कार्य के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं?

(i) रामकुमार वर्मा

(ii) सफदर हाशमी

(iii) लक्ष्मीनारायण मिश्र

(iv) मोहन राकेश

(छ) नुक्कड़ नाटक पर एक टिप्पणी लिखिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

16.7 सारांश

- हिंदी में नाटक लेखन की शुरुआत उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से हुई। भारतेंदु युग में यह गद्य की केंद्रीय विधा बन गई थी।
- भारतेंदुयुगीन नाटकों पर नवजागरण की चेतना का प्रभाव पड़ा तथा नाटकों में राष्ट्र की समस्या तथा समाज-सुधार को विषय बनाया गया। व्यंग्य इस समय के नाटकों का एक प्रमुख पक्ष था।
- द्विवेदी युग में इस विधा में कुछ खास विकास नहीं हुआ। इस युग में मुख्य रूप से पारसी रंगमंच का बोलबाला था। पारसी रंगमंच पर मनोरंजन प्रधान नाटक खेले जाते थे। राधेश्याम कथावाचक, नारायण प्रसाद 'बेताब' आदि ने इसी मानदंड के अनुरूप नाट्य-लेखन किया।
- प्रसाद युग में एक बार पुन : नाटक विधा में अभूतपूर्व विकास हुआ। प्रसाद के नाटकों में इतिहास, दर्शन तथा संस्कृति महत्वपूर्ण तत्व हैं। राष्ट्रीय -सांस्कृतिक जागरण तथा नारी के संघर्ष, त्याग और अस्मिता को उन्होंने सर्वाधिक महत्व दिया।
- प्रसादोत्तर दौर में हिंदी नाटक का बहुआयामी विकास हुआ। सामाजिक-वैयक्तिक यथार्थ को विषय बनाया गया।
- गीति नाट्य, एकांकी, रेडियो नाटक, नुक्कड़ नाटक आदि नाटक के विभिन्न रूप हैं।

16.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- *हिंदी नाटक : उद्भव और विकास* – डॉ. दशरथ ओझा, राजपाल एंड सन्स, नई दिल्ली
- *हिंदी का गद्य साहित्य* – डॉ. रामचंद्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

16.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

(क) (iv)

(ख) हिंदी नाट्य साहित्य को मुख्य रूप से चार भागों में बाँटा जाता है जो इस प्रकार है :

(i) भारतेंदु युगीन हिंदी नाटक

(ii) द्विवेदी युगीन हिंदी नाटक

(iii) प्रसाद युगीन हिंदी नाटक तथा

(iv) प्रसादोत्तर हिंदी नाटक

(ग) देखें भाग – 16·2

(घ) देखें भाग – 16·2

(ङ) देखें भाग – 16·3

बोध प्रश्न-2

(क) (i) स्वच्छंदतावादी

(ii) इतिहास

(iii) नया प्रयोग

(iv) विवाद का विषय

(ख) (i) भारत के अतीत की गौरव का आधुनिक संदर्भों में चित्रण।

(ii) प्रेम की भाव प्रवण तथा मानवीय संवेदना।

(iii) राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जीवन की अभिव्यक्ति।

(iv) देश भक्ति जागरण सुधार की चेतना।

(ग) (i) हाँ

(ii) नहीं

(iii) हाँ

(iv) हाँ

बोध प्रश्न-3

(क) (i) लक्ष्मीनारायाण मिश्र

(ii) सेठ गोविंददास

(iii) उदयशंकर भट्ट

(iv) दुष्यंत कुमार

(v) मोहन राकेश

(ख) देखें -भाग - 16.5

बोध प्रश्न-4

(क) (i) गीतात्मकता

(ii) भावावेग की प्रबलता

(iii) आंतरिक द्वंद्व

(ख) (i) देशप्रेम

(ii) समाज सुधार

(iii) यौन समस्याएँ

(iv) समसामयिक जीवन से जुड़े प्रश्न।

(ग) (i) हाँ

(ii) हाँ

(iii) नहीं

(iv) हाँ

(v) नहीं

(vi) हाँ

(घ) (i) एकांकी लेखन की शुरूआत

(ii) नाटक को रंगमंच से जोड़ने का प्रयास

(iii) लोक नाट्य शैलियों की लोकप्रियता

(iv) नुक्कड़ नाटकों की शुरूआत

(v) कहानियों-उपन्यासों आदि के नाट्य रूपांतरों की प्रस्तुतियाँ

(ङ) (i) उपेंद्रनाथ अश्क

(ii) जगदीश चंद्र माथुर

(iii) मोहन राकेश

(iv) लक्ष्मीनारायण लाल

(v) भीष्म साहनी

(च) (i) एकांकी लेखन के लिए

(ii) नुककड़ नाटक का लेखन और प्रस्तुति

(iii) हिंदी में समस्या नाटक की शुरूआत

(iv) नाटक लेखन के लिए

(छ) देखें – भाग 16.6.4

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 17 हिंदी निबंध का विकास

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 हिंदी निबंध का विकास

17.2.1 शुक्ल पूर्व युग (1850 ई. से 1920 ई.)

17.2.2 शुक्ल युग (1920 ई. से 1940 ई.)

17.2.3 शुक्लोत्तर युग (1940 ई. से आजतक)

17.3 सारांश

17.4 उपयोगी पुस्तकें

17.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

17.0 उद्देश्य

आधुनिक युग में गद्य की जिन विभिन्न विधाओं का विकास हुआ निबंध उनमें से एक प्रमुख विधा है। इस इकाई में आपको हिंदी निबंध के विकास की जानकारी दी जा रही है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- हिंदी निबंध के विकास का विवरण प्रस्तुत कर सकेंगे तथा
- हिंदी निबंध के विकास के विभिन्न चरणों की विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई हिंदी निबंध के विकास से संबंधित है। इसका विकास आधुनिक युग में हुआ और पत्र-पत्रिकाओं के बढ़ते प्रसार ने इन्हें लोकप्रिय बनाया है। इसकी शुरुआत उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से मानी जाती है। विचारों की अभिव्यक्ति के लिए निबंध विधा बड़ी कारगर थी अतः भारतेंदु हरिश्चंद्र और उनके समकालीन लेखकों ने अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए इस विधा का सहारा लिया। भारतेंदु युग के बाद द्विवेदी युग में 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से निबंध का विकास हुआ। शुक्ल युग में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने निबंधों में गहन वैचारिकता और विश्लेषण के तत्वों का समावेश किया। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने एक नई शैली विकसित की जो ललित निबंध के नाम से जानी जाती है। इन सबकी जानकारी इस इकाई में दी जा रही है जिससे हिंदी निबंध के विकास-क्रम में आए महत्वपूर्ण परिवर्तनों और उनकी विशिष्टताओं को आप समझ सकें।

17.2 हिंदी निबंध का विकास

साहित्य रूप की दृष्टि से हिंदी में निबंध का जन्म और विकास आधुनिक युग की देन है। साहित्य के अनेक रूपों के साथ निबंध रूप का आविर्भाव अनेक कारणों से हुआ– राष्ट्रीय जागरण, देश प्रेम, व्यक्ति स्वातंत्र्य, अंतर्राष्ट्रीयता, वैज्ञानिक मशीनों का प्रयोग (औद्योगिक क्रांति), आवश्यकताओं की वृद्धि, गद्य का प्रचलन, मुद्रण कला का प्रचार, पत्र-पत्रिकाओं का

प्रकाशन और अंग्रेजी साहित्य का संपर्क आदि। इन सब कारणों से निबंध रचना को विशेष प्रोत्साहन मिला क्योंकि इस विधा के माध्यम से लेखक अपनी बात पाठकों तक सीधे पहुँचा सकता था। हिंदी निबंध की शुरुआत उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से मानी जाती है। निबंध की आरंभिक परंपरा में भारतेंदु युग के लेखकों का विशेष महत्व है क्योंकि उन्होंने विषय, शैली और भाषा तीनों स्तरों पर निबंधों में नए प्रयोग किए किंतु निबंधों को प्रौढ़ रूप द्विवेदी युग में ही प्राप्त हुआ। इस दौर में जहाँ एक ओर भाषा का मानक रूप निर्मित हुआ, वहीं दूसरी ओर चिंतन में प्रौढ़ता और शैली में परिष्कार भी हुआ। हिंदी निबंध के विकास में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का केंद्रीय महत्व रहा है। उन्होंने विचार, शैली और भाषा– तीनों स्तरों पर हिंदी निबंध को उच्च स्तरीय स्वरूप प्रदान किया। जिस प्रकार हिंदी नाटक और कविता के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद का विशेष महत्व रहा है उसी प्रकार हिंदी निबंध के क्षेत्र में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का विशेष महत्व है। इसीलिए हिंदी निबंध के विकास के केंद्र में आचार्य रामचंद्र शुक्ल को मानते हुए हम उसे तीन युगों में बाँट सकते हैं :

(i) शुक्ल-पूर्व युग (1850 ई॰ से 1920 ई॰)

(ii) शुक्ल युग (1920 ई॰ से 1940 ई॰)

(iii) शुक्लोत्तर युग (1940 ई॰ से आज तक)

17.2.1 शुक्ल पूर्व युग (1850 ई. से 1920 ई.)

हिंदी नाटक की ही भाँति हिंदी निबंध लेखन की शुरुआत भारतेंदु युग से हुई। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 1868 ई. में 'कविवचन सुधा' का प्रकाशन आरंभ किया। इसके प्रकाशन ने हिंदी में साहित्यिक लेखन को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया। बाद में भारतेंदु ने 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' और 'बालाबोधिनी' पत्रिका की भी शुरूआत की। भारतेंदु युग के ही कई अन्य लेखकों ने भी पत्र-पत्रिकाएँ शुरू कीं। इनमें प्रतापनारायण मिश्र द्वारा प्रकाशित 'ब्राह्मण', 'बालकृष्ण भट्ट' का 'हिंदी प्रदीप', बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' का 'आनंद कादंबिनी', श्रीनिवास दास का 'सदादर्श' आदि प्रमुख हैं। उस युग में लिखे गए निबंध प्रायः इन्हीं पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते थे।

वैसे हिंदी में निबंध लेखन की शुरुआत कब हुई और पहला निबंध कब लिखा गया और किसने लिखा, यह बहुत स्पष्ट नहीं है। आम तौर पर माना जाता है कि बालकृष्ण भट्ट हिंदी निबंध के जनक हैं।

भारतेंदु युग (1875 ई॰ से 1900 ई॰) : भारतेंदु युग के निबंधों की मूल प्रेरणा अपने समाज के नैतिक और राजनीतिक जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने की भावना है। इसलिए इस युग के निबंधकारों ने समाज सुधार, राष्ट्रप्रेम, देशभक्ति, अतीत-गौरव का प्रेम, विदेशी शासन के प्रति आक्रोश आदि को अपने निबंधों का विषय बनाया है। यद्यपि उस समय विदेशी शासन के विरुद्ध जन आंदोलन शुरू नहीं हुए थे, इसलिए लेखकों ने अंग्रेजी शासन के प्रति भक्ति भावना भी दिखलाई है, लेकिन राष्ट्र के विकास की चिंता और उसके प्रति प्रेम भी बराबर व्यक्त किया है। भारतेंदु युग के निबंधकारों ने इन विषयों के अतिरिक्त ऐसे विषयों पर निबंध लिखे जिनमें उनकी जिंदादिली और विनोदवृत्ति झलकती है। जैसे - 'आँख' 'नाक', 'भौं', 'धोखा', 'बुढ़ापा' आदि विषयों पर निबंध लिखे गए। भारतेंदु युग के लेखकों की मूल प्रवृत्ति मनोविनोद की थी, इसलिए वे गंभीर से गंभीर विषय को हास्य और व्यंग्यपूर्ण शैली में सजीव बनाकर प्रस्तुत करते थे। उनके निबंधों में गंभीर विवेचन का प्रायः अभाव मिलता है लेकिन वे रससिक्त, चुटकी और चिकोटी से भरे पड़े हैं। व्यक्तित्व का सहज समावेश होने के कारण इस दौर के निबंधों की प्रमुख विशेषता आत्मनिष्ठता है।

भारतेंदु युग में हिंदी भाषा का कोई मानक रूप नहीं बना था। व्याकरण की दृष्टि से वह निर्दोष नहीं कही जा सकती। लेकिन बात को प्रभावशाली ढंग से कहना वे जानते थे, विशेषकर भाषा के माध्यम से व्यंग्य और विनोद की सृष्टि करने में वे माहिर थे। मुहावरों, लोकोक्तियों के प्रयोग से इस युग के निबंधों की भाषा प्राणवान बन गई है। उनके पास व्यापक शब्द भंडार हैं। तत्सम, तद्भव शब्दों के साथ अरबी-फारसी-उर्दू शब्दों की बहुतायत है। कुछ निबंध तो पूर्णतः उर्दू शैली में लिखे गए हैं। प्रायः उनकी शैली निष्कर्ष निकालकर शिक्षापूर्ण निर्देश और उपदेश देने की है।

इस युग के प्रमुख निबंधकारों में भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', लाला श्रीनिवासदास, अंबिकादत्त व्यास, बालमुकुंद गुप्त, जगमोहन सिंह, केशवराम भट्ट, राधाचरण गोस्वामी आदि हैं।

भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850 ई.-1885 ई.) साहित्य में युग-प्रवर्तक माने जाते हैं। उन्होंने इतिहास, पुरातत्व, धर्म, समाज-सुधार, जीवनी, यात्रा वर्णन, भाषा आदि विषयों पर व्यंग्यात्मक शैली में निबंध लिखे। विषयों की विविधता उनके विस्तृत अध्ययन और व्यापक जीवनानुभवों का परिणाम थी। उनके निबंधों में जहाँ इतिहास, धर्म, संस्कृति और साहित्य की गहरी जानकारी का परिचय मिलता है, वहीं देशप्रेम, समाज सुधार की चिंता और गौरवशाली अतीत के प्रति निष्ठा का भाव भी प्रकट होता है। 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है', 'लेवी प्राण लेवी' और 'जातीय संगीत' में राष्ट्र के प्रति उनकी गहरी निष्ठा व्यक्त हुई है तो 'स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन', 'पाँचवें पैगम्बर', 'कानून ताजीरात शौहर', 'ज्ञात विवेकिनी सभा', 'अंग्रेज स्तोत्र', 'कंकड़ स्तोत्र' जैसे निबंधों में उनकी राजनीतिक चेतना के साथ ही व्यंग्य-विनोद क्षमता का पता लगता है। भारतेंदु के निबंधों की भाषा में उर्दू, संस्कृत और बोलचाल की हिंदी के शब्दों का प्रयोग हुआ है। 'कानून ताजीरात शौहर' की भाषा उर्दूनिष्ठ है, एक उदाहरण देखिए :

''जो शौहर अपनी जोरू से लड़ना चाहे या लड़े या गैर शख्स जो उससे लड़ता हो, उसकी इमदाद करे तो उसको किसी किस्म की कैद की सजा दी जायेगी लेकिन अगर अदालत की राय में यह जुर्म संगीन मालूम हो तो हब्सदवाम बअबूर दरयायशोर की सजा देने का भी अदालत को अख्तियार है।''

उपर्युक्त अंश की भाषा उर्दूनिष्ठ है और इसमें व्यंग्य-विनोद भी है। भाषा के एक अन्य रूप का उदाहरण भी देखिए :

''भारतवर्ष की उन्नति के जो अनेक उपाय महात्मागण आजकल सोच रहे हैं, उनमें एक और उपाय भी होने की आवश्यकता है। इस विषय के बड़े-बड़े लेख और काव्य प्रकाश होते हैं, किंतु वे जनसाधारण को दृष्टिगोचर नहीं होते। इसके हेतु मैंने यह सोचा कि जातीय संगीत की छोटी-छोटी पुस्तकें बनें और वे सारे देश गाँव में साधारण लोगों में प्रचार की जायें।''

('जातीय संगीत' : भारतेंदु)

उपर्युक्त अंश में संस्कृतनिष्ठ, तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है लेकिन भाषा सहज है। एक बात जो ध्यान देने की है वह यह कि भाषा के प्रति भारतेंदु का दृष्टिकोण यथार्थवादी था। इस तथ्य का पता हमें उनके पहले उदाहरण से चलता है जिसमें कि कानून संबंधी विषय का वर्णन है। चूँकि उस समय अदालतों की भाषा उर्दूनिष्ठ थी, भारतेंदु के निबंध की भाषा भी उर्दूनिष्ठ है।

बालकृष्ण भट्ट (1844 ई॰-1914 ई॰) इस युग के प्रमुख निबंधकार हैं। उन्होंने लगभग एक हजार निबंध लिखे हैं। बालकृष्ण भट्ट ने बत्तीस वर्षों तक 'हिंदी प्रदीप' निकाला। उन्होंने समाज, साहित्य, धर्म, संस्कृति, रीति, प्रथा, भाव, कल्पना – सभी क्षेत्रों से विषयों का चयन किया है। भट्ट जी के निबंधों में हास्य-विनोद के साथ कल्पना, भावना और वैचारिकता भी दृष्टिगत होती है। उनकी भाषा प्रायः बोलचाल के समीप है। उनमें हिंदी के अतिरिक्त उर्दू, अंग्रेजी तथा संस्कृत के शब्दों का काफी प्रयोग हुआ है जिससे भाषा कहीं-कहीं बोझिल हो गई है। उन्होंने 'चारुचरित्र', 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है', 'चरित्रपालन', 'प्रतिभा', 'आत्मनिर्भरता' जैसे विचारात्मक निबंध; 'आँसू' 'मुग्ध माधुरी' 'पुरुष अहेरी की स्त्रियाँ अहेर हैं', 'प्रेम के बाग का सैलानी' आदि भावात्मक निबंध; 'संसार-महानाट्यशाला', 'चंद्रोदय', 'शंकराचार्य' और 'नानक' जैसे वर्णनात्मक निबंध; 'आँख', 'कान', 'नाक', 'बातचीत' जैसे सामान्य विषयों तथा 'इंगलिश पढ़े सौ बाबू होय', 'दंभाख्यान', 'अकिल अजीरन रोग' जैसे व्यंग्य-विनोदपरक निबंध लिखे। सामाजिक समस्याओं पर लिखे गए उनके निबंध हैं – 'बालविवाह', 'स्त्रियाँ और उनकी शिक्षा' 'महिला स्वातंत्र्य' आदि।

प्रतापनारायण मिश्र (1856 ई॰ - 1894 ई॰) का हिंदी निबंध के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उनमें तीखे व्यंग्य और विनोद की वृत्ति थी, जिसका उल्लेख स्वयं रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रंथ में किया है। इनकी भाषा में व्यंग्यपूर्ण वक्रता की मात्रा अधिक है। इसके लिए वे लोकोक्तियों और मुहावरों का भी प्रयोग करते हैं। मिश्र जी ने जहाँ एक ओर 'भौं', 'बुढ़ापा', 'होली', 'धोखा', 'मरे को मारे शाहमदार' जैसे विनोद और सूझपूर्ण निबंध लिखे हैं वहीं दूसरी ओर 'शिवमूर्ति', 'काल', 'स्वार्थ', 'विश्वास', 'नास्तिक' जैसे गंभीर विषयों पर भी लेखनी चलाई है।

बालमुकुंद गुप्त (1965 ई॰ - 1907 ई॰) भारतेंदु युग के प्रतिभावान निबंधकार हैं। इन्होंने द्विवेदी युग में भी महत्वपूर्ण लेखन किया है। गुप्त जी ने 'बंगवासी' और 'भारतमित्र' पत्रिकाओं का संपादन किया। इन पत्रिकाओं के माध्यम से ही उनके निबंध प्रकाशित हुए। उनके निबंधों में गहन चिंतन, तीखा व्यंग्य और मीठी हँसी का समावेश मिलता है। 'शिवशंभु का चिट्ठा' के आठों चिट्ठे उनकी देशभक्ति की भावना के द्योतक तो हैं ही, व्यंग्य और गहरी विचारशीलता के भी परिचायक हैं। इनके निबंधों का संग्रह 'गुप्त निबंधावली' नाम से प्रकाशित हुआ है।

द्विवेदी युग (1900 ई॰ से 1920 ई॰) : हिंदी निबंध का द्वितीय युग 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' तथा 'सरस्वती' के प्रकाशन से प्रारंभ होता है। इस युग में राष्ट्रीय चेतना और अधिक परिपक्व हो चुकी थी। यह युग राष्ट्रीय जागृति, विश्वप्रेम, सामाजिक एकता, अतीत गौरव, सांस्कृतिक नवजागरण तथा भाषा के परिष्कार का युग है। अतः इस युग के निबंधों में विषयों की विविधता, विचारों की गंभीरता और भाषा की शुद्धता और व्याकरण सम्मतता मिलती है। उधर राष्ट्रीय परिस्थितियों ने संपूर्ण युग को गंभीरता, उत्तरदायित्व तथा सोद्देश्यता से ऐसा बोझिल बना दिया कि व्यंग्य-विनोद, हास-परिहास, राग-रस आदि की मात्रा कम होती गई। इस युग के निबंध जिन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए उनमें 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (1896 ई॰), 'सरस्वती', 'समालोचक' (1902 ई॰), 'इंदु' (1909 ई॰), 'मर्यादा' (1910 ई॰), 'प्रभा' (1913 ई॰) आदि प्रमुख हैं।

इस युग के निबंधकारों में महावीरप्रसाद द्विवेदी, बालमुकुंद गुप्त, श्यामसुंदर दास, रामचंद्र शुक्ल, सरदार पूर्णसिंह, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, माधवप्रसाद मिश्र आदि प्रमुख हैं।

महावीरप्रसाद द्विवेदी (1864 ई॰ - 1938 ई॰) ने मूलतः विचारात्मक निबंध लिखा। द्विवेदी जी

को इस बात की चिंता सबसे अधिक थी कि हिंदी पाठक की ज्ञान-पिपासा को कैसे तृप्त किया जाए। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में उपलब्ध नई और उपयोगी जानकारी उस तक कैसे पहुँचाई जाए और सबसे बढ़कर उसमें हिंदी माध्यम में सोचने की क्षमता का विकास कैसे किया जाए। इसके लिए उन्होंने कहानी, निवेदन, उपदेश, संदेश, निर्देश, प्रमाण, उदाहरण, तथ्य का उल्लेख आदि बहुविध उपयोगी और रोचक पद्धतियों से निबंध का प्रारंभ, विकास और समापन करते हुए पाठकों को नूतन सामग्री दी। 1903 ई॰ में उन्होंने 'सरस्वती' के संपादकत्व का कार्यभार संभाला और 1920ई॰ तक इस कार्य में लगे रहे। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' के माध्यम से हिंदी भाषा और साहित्य को प्रौढ़ता और नवीनता प्रदान की। उन्होंने गद्य की अनेक शैलियों का प्रवर्तन तथा भाषा का संस्कार किया। अंग्रेजी के 'बेकन' के निबंधों का अनुवाद भी 'बेकन विचार रत्नावली' के नाम से प्रस्तुत किया, जिससे हिंदी के अन्य लेखकों को निबंध लिखने की प्रेरणा मिली। (हिंदी साहित्यकोश : भाग 2, सं॰ डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा)।

महावीरप्रसाद द्विवेदी के समीक्षात्मक निबंधों में 'कवि और कविता', 'साहित्य की महत्ता'; वर्णनात्मक निबंधों में 'एक योगी की साप्ताहिक समाधि' और 'अद्‌भुत इंद्रजाल' आदि प्रमुख हैं। युगव्यापी नीरसता से अलग हटकर उन्होंने कुछ ऐसे निबंध भी लिखे जिनमें विचारों के ऊपर लालित्य का रंग चढ़ गया है। साधारण विषय को भी गंभीर स्तर तक उठाने और गूढ़ अर्थों के उद्‌घाटन का प्रयत्न किया गया है। 'दंडदेव का आत्मनिवेदन' इस प्रसंग में उल्लेखनीय है।

पंडित माधव प्रसाद मिश्र द्विवेदी युग के प्रभावशाली लेखक थे। उन्होंने 'सुदर्शन' का संपादन किया था। भारत की प्राचीन संस्कृति, धर्म, दर्शन और साहित्य के प्रति उनकी गहरी आस्था थी। राष्ट्र के उत्थान और जनसाधारण के आर्थिक तथा नैतिक विकास की हार्दिक लालसा उनके मन में थी। मिश्र जी ने कुछ ऐसे निबंध भी लिखे हैं जिनका संबंध मनोविकारों और गार्हस्थिक समस्याओं से है। इनमें शास्त्रीय निरूपण कम है, अनुभव और व्यवहार का सहारा लिया गया है। कुछ चिंतनपरक निबंध भी हैं जैसे- 'सब मिट्‌टी हो गया'। त्योहारों और पर्वों पर उनके निबंध भावपूर्ण और कल्पना के सौंदर्य से सम्पन्न हैं। 'होली', 'रामलीला', 'व्यासपूजा', 'श्रीपंचमी' आदि ऐसे ही निबंध हैं। शोध और अनुसंधान के क्षेत्र में उनकी खंडन-मंडन वाली शैली प्रभावपूर्ण थी। 'बेवर का भ्रम' इसका अच्छा उदाहरण है।

बाबू श्यामसुंदर दास के अधिकांश निबंध आलोचनात्मक हैं। उनके विषय प्रायः साहित्यिक और सांस्कृतिक रहे। इनमें विचारों और भावों का प्रवाह निरंतर जारी रहता है। उनके विवेचन में जितना विस्तार मिलता है, उतनी गहराई नहीं। इसके दो कारण हैं – पहला, तो यह कि वे लेखक होने के साथ-साथ वक्ता भी थे। उनके निबंधों को पढ़ने से व्याख्यान का-सा आभास होता है। दूसरा कारण यह है कि वे हिंदी भाषा और साहित्य के अभावों को दूर करना चाहते थे। इसलिए एक ही विषय के गहन विवेचन के बजाय अनेक विषयों पर व्यापक विचार कर लेना वे अधिक उपयोगी समझते थे।

श्यामसुंदर दास की भाषा संस्कृतनिष्ठ और प्रवाहपूर्ण थी। बोलचाल अथवा उर्दू के शब्दों का व्यवहार उन्होंने कम ही किया है। उनके विचारात्मक निबंधों में व्यास-शैली के दर्शन होते हैं जैसे- 'भारतीय साहित्य की विशेषताएँ' निबंध में।

सरदार पूर्ण सिंह (1881 ई॰-1931 ई॰) द्विवेदी युग के ऐसे लेखक हैं जो केवल छः निबंधों के बल पर श्रेष्ठ निबंधकार माने गए। उनके निबंध नैतिक और सामाजिक विषयों से सम्बद्ध हैं। इन निबंधों में प्रचलित प्रणाली से भिन्न, जो पद्धति विचारों की व्यंजना के लिये अपनाई गई, वह सर्वथा मौलिक और रूपात्मक विकास की दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण है। ललित निबंध

की जो धारणा आज प्रचलित है, उसका प्रत्यक्ष रूप इनके तीन निबंधों 'आचरण की सभ्यता', 'मजदूरी और प्रेम' तथा 'सच्ची वीरता' में मिल जाती है। उनके शेष तीन निबंध हैं – 'कन्यादान', 'पवित्रता' 'अमेरिका का मस्त जोगी वाल्ट ह्विटमैन'। ये निबंध हिंदी भाषा की स्थायी और मूल्यवान निधि हैं। इसमें व्यक्तित्व की सहज अनुभूति और शैलीगत लालित्य मिलता है। सरदार पूर्ण सिंह की भाषा संकेत संपन्न और भाव-व्यंजक है। संतुलित शब्द विन्यास और वाक्य संगठन निबंध के लालित्य को बढ़ाते हैं।

चंद्रधर शर्मा गुलेरी (1883 ई॰-1920 ई॰) इतिहास, संस्कृति, साहित्य और भाषा के प्रकांड पंडित थे। उन्होंने इन्हीं विषयों पर खोजपूर्ण (गवेषणापूर्ण) और गंभीर निबंध लिखे। उनके निबधों में गंभीरता के साथ सरल व्यंग्य विनोद, पांडित्य के साथ बौद्धिक सरसता और प्राचीनता के साथ नवीनता का अद्‌भुत सामंजस्य दिखाई देता है। 'कछुआ धर्म' (विचार प्रधान) और 'मारेसि मोहि कुठाँव' (भाव प्रधान) में आग्रह, सामयिकता और तात्कालिक कर्त्तव्य का ही है। गुलेरी के निबंध उनके व्यक्तित्व की सजीवता से ओत-प्रोत हैं। उनकी भाषा अधिकतर चलते हुए शब्दों से बनी है। केवल प्रसंगवश पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया है। किसी विशेष प्रकार के शब्द-समूह पर उनका आग्रह नहीं था। वे छोटे-छोटे वाक्य लिखते थे लेकिन उन्हें भावपूर्ण बना देते थे।

पद्मसिंह शर्मा के निबंध आलोचनात्मक हैं। निबंध मुख्यतः साहित्यिक विषयों अथवा व्यक्तियों पर लिखे गए हैं। इनके निबंधों के संग्रह 'पद्मपराग' और 'पंद्ममंजरी' नाम से प्रकाशित हुए। किसी सामान्य विषय को लेकर चिंतन तथा कल्पना के सहारे उसमें जान डाल देना उनके लिए आसान था। शर्माजी की भाषा में प्रचलित बोली के मुहावरे, शब्द तथा उर्दू-फारसी और अंग्रेजी के शब्दों का खुलकर प्रयोग किया गया है। वे अवसर के अनुकूल छोटे-छोटे वाक्यों में सफाई के साथ अपनी बात कह जाते हैं। विचारों में उलझन और दुरूहता नहीं दिखती। उन्होंने ऐसी भाषा का विकास किया जो आलोचना अथवा निबंध को भी कहानी तथा उपन्यास की तरह सरस बना सके।

बोध प्रश्न-1

(क) निम्नलिखित कथनों के आगे सही (✓) अथवा गलत (×) का निशान लगाइए।

(i) हिंदी में ललित निबंध की शैली को आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने विकसित किया।

(ii) आम तौर पर बालकृष्ण भट्ट को हिंदी निबंध का जनक माना जाता है।

(iii) प्रताप नारायण मिश्र शुक्ल युग के एक प्रमुख निबंधकार हैं।

(iv) 'बेकन विचार रत्नावली' महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा बेकन के निबंधों के हिंदी अनुवाद का संग्रह है।

(v) बाबू श्यामसुंदर दास ने ज्यादातर ललित निबंध लिखा है।

(ख) निम्नलिखित निबंधों के आगे उनके लेखक का नाम लिखिए।

	निबंध	**निबंधकार**
(i)	भौं	.....
(ii)	लेवी प्राण लेवी	.....

(iii) कवि और कविता .....

(iv) कछुआ धर्म .....

(v) मजदूरी और प्रेम .....

(ग) निम्नलिखित निबंधकारों का परिचय पाँच-पाँच पंक्तियों में दीजिए।

(i) सरदार पूर्ण सिंह

.....

.....

.....

.....

.....

(ii) भारतेंदु हरिश्चंद्र

.....

.....

.....

.....

.....

(iii) बालकृष्ण भट्ट

.....

.....

.....

.....

.....

(घ) भारतेंदु युगीन निबंध विधा की विशेषताओं का उल्लेख दस पंक्तियों में कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

17.2.2 शुक्ल युग (1920 ई॰ से 1940 ई॰)

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंध के क्षेत्र में पदार्पण करने से निबंध-साहित्य में एक नया जीवन आया। द्विवेदी युग में विषय-विस्तार और गद्य भाषा का परिष्कार तो पर्याप्त हुआ किंतु उस काल में उतनी विश्लेषण बुद्धि से काम लेने और गहराई में जाने की प्रवृत्ति न उत्पन्न हो सकी। शुक्ल युग में गद्य की भाषा में सृजनात्मक प्रयोग का कार्य आरंभ हुआ। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने गद्य भाषा को निखारने और जटिल से जटिल विषय, विचार और भाव को सफलतापूर्वक प्रस्तुत करने का उल्लेखनीय कार्य किया। यह वह दौर था जब कथा साहित्य के क्षेत्र में छायावादी कवि सक्रिय थे। इनका स्पष्ट प्रभाव निबंध लेखन पर पड़ा। स्वयं छायावादी कवियों और प्रेमचंद ने विभिन्न विषयों पर निबंध लिखे। छायावादी कवियों की गद्य भाषा में सरसता, भाव प्रवणता, कल्पनाशीलता आदि गुण दिखाई देते हैं। प्रेमचंद के गद्य लेखन में स्पष्टता, तार्किकता, सरलता और सहजता के गुण हैं। इस युग की गद्य भाषा पर इन दोनों तरह के लेखन का प्रभाव पड़ा। इस युग के निबंधकारों में देशभक्ति और राष्ट्र प्रेम की भावनाओं के साथ व्यापक मानवीय दृष्टिकोण भी रहा है।

शुक्ल युग में रचना-विन्यास की दृष्टि से एक अन्य बात भी ध्यान देने योग्य है। निबंध को जिस प्रकार उपयोगी विषयों पर लिखे गए लेखों से अलग किया गया, उसी प्रकार रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, यात्रा वृतांत आदि अन्य साहित्यिक विधाओं से भी। इससे स्पष्ट हो जाता है कि "द्विवेदी युग की अपेक्षा इस युग में संरचनात्मक दृष्टि से निबंध के अधिक स्पष्ट लक्षण निर्मित हुए और लेखकों तथा आलोचकों के बीच इस विषय की सही धारणा विकसित हुई।" (हिंदी वाङ्मय : बीसवीं शती–संपादक : डॉ॰ नगेंद्र)।

शुक्ल युग के निबंधकारों में रामचंद्र शुक्ल, गुलाब राय, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, निराला, महादेवी वर्मा, नंददुलारे वाजपेयी, शांतिप्रिय द्विवेदी, प्रेमचंद, राहुल सांकृत्यायन, रामनाथ सुमन, माखनलाल चतुर्वेदी आदि प्रमुख हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल (1884 ई॰ - 1941 ई॰) इस युग के प्रतिनिधि निबंधकार हैं। शुक्ल जी ने विभिन्न विषयों पर निबंध लिखे जो 'चिंतामणि' के तीन भागों में संकलित हैं। उनकी प्रवृत्ति गंभीर विवेचन और तीखे व्यंग्य की रही है। यही कारण है कि निबंधों में उनका चिंतक और मानवतावादी रूप उभरा है। उन्होंने 'भय', 'क्रोध', 'श्रद्धा और भक्ति', 'घृणा', 'करुणा', 'लज्जा', 'ग्लानि', 'लोभ और प्रीति', 'ईर्ष्या', 'उत्साह' आदि विभिन्न मनोभावों पर दस निबंध लिखे जिनमें इन मनोभावों के सामाजिक पक्ष का विश्लेषण किया गया है। शुक्ल जी ने साहित्य के गंभीर पक्षों पर भी लिखा। ऐसे निबंधों में गंभीर चिंतन, सैद्धांतिक विवेचना और

तर्कपूर्ण व्याख्या तो मिलती ही है, भावुक हृदय के दर्शन भी होते हैं जैसे- 'कविता क्या है', 'साधारणीकरण' और व्यक्ति-वैचित्र्यवाद','रसात्मक बोधके विविध रूप', 'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था' आदि।

शुक्ल जी हिंदी भाषा की अपनी प्रकृति के बेजोड़ पारखी थे। शब्द और अर्थ के पारस्परिक संबंधों को वे अच्छी तरह समझते थे। शुक्ल जी ने विचारों के संप्रेषण के लिए संस्कृत, फारसी-उर्दू और बोलचाल की शब्दावली अपनाई है। उन्होंने लोकोक्तियों, मुहावरों तथा लक्षणा के नूतन और बहुविध प्रयोगों द्वारा एक ओर हिंदी गद्य को व्यंजक बनाया और दूसरी ओर चित्र-विधान में सहायता देने वाली समर्थ भाषा का निर्माण किया। शुक्ल जी ने विषय, भाषा और शैली सभी दृष्टियों से हिंदी निबंधों को उत्कृष्ट बनाया।

बाबू गुलाबराय (1888 ई॰-1963 ई॰) का निबंध साहित्य इस युग में इसलिए उल्लेखनीय है कि वह मुख्यतः आत्मपरक और व्यंग्यमूलक होने के साथ-साथ लेखक के पांडित्य और जीवन दर्शन की छवि भी प्रस्तुत करता है। उनके निबंधों में गंभीर चिंतन तो मिलता ही है, आत्मीयतापूर्ण व्यंग्य-विनोद भी उनमें देखा जा सकता है। इसके प्रमाणस्वरूप उनके दो निबंध संग्रह सामने रखे जा सकते हैं – 'फिर निराशा क्यों' और 'मेरी असफलताएँ'। पहले संग्रह में विचार और तत्व चिंतन की प्रधानता है, सामाजिक दायित्व और राष्ट्रीय और वैयक्तिक आचारमूलक प्रश्न उठाए गए हैं, अंतर्वृत्तियों की मनोवैज्ञानिक छानबीन है। उधर दूसरे संग्रह में हास्य, रससिक्त आत्माभिव्यंजन और व्यंग्य-विनोद से निबंधों को लालित्यपूर्ण बनाया गया है।

गुलाबराय जी की भाषा में प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया गया है। संस्कृत, उर्दू, देशज, अंग्रेजी शब्द सहज रूप में ग्रहण किए गए हैं। लोकोक्तियों और मुहावरों का भी धारा प्रवाह प्रयोग किया गया है।

माखनलाल चतुर्वेदी तन, मन और प्राण से पूर्णतः राष्ट्रीय थे। उनकी रचनाओं में अनुभूति-प्रवणता अवश्य है, किंतु विषय के वस्तुगत विवेचन की उपेक्षा नहीं हुई है। वे तथ्यों, घटनाओं और वस्तु रूपों के प्रति पाठकों में रागात्मक चेतना जगाकर उन्हें कर्म की ओर अग्रसर करना चाहते थे। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने भाव का आश्रय लिया और ज्ञान को उसकी छाया में विकसित किया। रागतत्व की प्रधानता के कारण उनका गद्य लयात्मक, लालित्यपूर्ण और प्रवाहयुक्त बन गया है। 'साहित्यदेवता' संग्रह में रसपूर्ण, आत्मभिव्यंजक निबंध हैं। चतुर्वेदी जी ने अप्रस्तुत योजना (प्रतीकात्मक अर्थ) का आश्रय लेकर भाषा को बिंब-विधायिका बना दिया है। उनकी गद्य शैली भावावेग से विचारों को प्रस्तुत करती है। अतः वाक्य-विन्यास भी कहीं बहुत लंबा, कहीं मध्यम आकार का तथा कहीं अत्यंत छोटा हो जाता है। उनकी भाषा में तत्सम और तद्भव शब्दों के अतिरिक्त फारसी, उर्दू और अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी किया गया है।

राहुल सांकृत्यायन बहुभाषाविद्, पर्यटक, साहित्यकार, अन्वेषक और पुरातत्ववेत्ता थे। उनके पुरातत्व विषयक निबंध 'पुरातत्व निबंधावली' में प्रकाशित हैं। 'साहित्य निबंधावली' में भाषा और साहित्य विषयक निबंध संकलित हैं। उनके यात्रा विवरणों को उत्कृष्ट निबंधों की कोटि में रखा जा सकता है।

राहुल जी विषयों के जानकार और ज्ञानी थे। इस कारण वे अपने निबंधों में विभिन्न नए तथ्यों का समावेश करते थे। राहुल जी ने अपने निबंधों में तत्कालीन विषयों को ग्रहण किया। 'मातृभाषाओं का प्रश्न', 'प्रगतिशील लेखक', 'हमारा साहित्य', 'भोजपुरी' आदि निबंध बहुचर्चित समस्याओं को संबोधित करते हैं। उनमें निबंधकार की अपनी तर्क-पद्धति और चिंतन-प्रक्रिया

दिखाई देती है। निबंधों में सहज-स्वाभाविक प्रवाह निखर कर सामने आ गया है। उन्होंने अपनी समृद्ध भाषा में मानव जीवन और प्रकृति के अनेक पदार्थों – गली, चौराहा, सड़क, भीड़, शोरगुल, वीरान, लता, कुंज, उद्यान, सागर, सरिता, पर्वत, मरुभूमि, घाटी, टोकरी आदि का रससिक्त चित्रण किया है।

राहुल जी का गद्य लोकोन्मुखी है। जनता की जबान पर चलने वाले शब्द उन्हें प्रिय थे। वे अंग्रेजी के परिवर्तित और प्रचलित शब्दों का व्यवहार भी खुलकर करते थे।

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला महाकवि के रूप में तो विख्यात हैं ही, गद्य के क्षेत्र में भी उनका योगदान कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है। उन्होंने अनेक प्रभावशाली निबंध लिखे जो 'प्रबंध पद्म', 'प्रबंध-प्रतिमा', 'चयन', 'चाबुक' आदि निबंध संग्रहों में संकलित हैं। ये निबंध मुख्यतः काव्य, साहित्य और हिंदी भाषा की अपनी समस्याओं से सम्बद्ध हैं।

निराला जी के निबंधों में ध्यान आकर्षित करने वाली सबसे महत्वपूर्ण बात है उनका अक्खड़ व्यक्तित्व जो किसी परिस्थिति में समझौते के लिए लाचार नहीं होता। उनके निबंधों में आत्माभिव्यक्ति के दर्शन होते हैं। एक विलक्षण बात यह है कि उनके निबंध भावुकता और कल्पना से दूर हैं। उनकी गद्य शैली यथार्थवादी है। वे अपने अनुभवों को सामान्य किंतु चुस्त भाषा में बिना किसी लाग-लपेट के कह देते हैं। पद्य की तरह गद्य में भी वे विवरण, तथ्य कथन या अर्थ निरूपण से संतुष्ट नहीं होते वरन् अप्रस्तुत विधान के आश्रय से उसे चित्रित कर देते हैं।

उनकी भाषा छोटे-छोटे वाक्यों से बनी है। उनके शब्द लोकोक्तियाँ, मुहावरे ग्रामीण परिवेश से लिए गए हैं। इस तरह जनभाषा का प्रयोग उन्होंने किया है।

बोध प्रश्न-2

(क) निम्नलिखित निबंध संग्रह तथा उनके लेखकों का सही युग्म बनाइए।

निबंध संग्रह		निबंधकार
(i) साहित्य निबंधावली	–	माखनलाल चतुर्वेदी
(ii) प्रबंध प्रतिमा	–	बाबू गुलाब राय
(iii) चिंतामणि	–	राहुल सांकृत्यायन
(iv) मेरी असफलताएँ	–	आचार्य रामचंद्र शुक्ल
(v) साहित्य देवता	–	सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

(ख) आचार्य रामचंद्र शुक्ल का एक निबंधकार के रूप में परिचय दीजिए।
(उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

(ग) शुक्लयुग के निबंध की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
(उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

17.2.3 शुक्लोत्तर युग (1940 से आज तक)

द्विवेदी युग और शुक्ल युग के निबंध अधिकाधिक गंभीर, साहित्यिक, विवेचनापूर्ण और तर्कसंकुल हो गए। इनमें न तो भारतेंदु युगीन निबंधों जैसी वैयक्तिकता है और न भावना की तरलता। यद्यपि छायावादी कवियों के निबंधों में व्यक्तित्व और आत्मीयता की झलक पाई जाती है किंतु अधिकतर निबंधों में आत्मपरकता और जिंदादिली का अभाव रहा। शुक्ल युग के बाद के दौर में एक बार फिर निबंधों में वैयक्तिकता का समावेश हुआ और वह विचारों को प्रकट करने का प्रमुख और सशक्त माध्यम बना। उसका आकार भी छोटा हुआ। भाषा बोलचाल की सी होने लगी। उसमें तत्सम शब्दों के स्थान पर तद्भव और देशी शब्दों का प्रयोग अधिक होने लगा। निबंध के विषयों में विविधता बढ़ने लगी है।

शुक्ल युग के बाद के दौर में निबंध लेखन की कई शैलियों ने अपनी अलग पहचान बनाई। इस युग में तीन प्रमुख शैलियों ने निबंध लेखन को उत्कर्ष पर पहुँचाया। ये शैलियाँ हैं – ललित निबंध, व्यंग्य निबंध और वैचारिक निबंध। अब आगे हम इन शैलियों और उनसे संबद्ध निबंधकारों का अध्ययन करेंगे।

वैचारिक निबंध : शुक्ल जी के बाद भी हिंदी में वैचारिक निबंधों की परंपरा बराबर बनी रही। इस दौर के वैचारिक निबंधों में विचार की स्पष्टता और तर्कपूर्ण चिंतन के साथ विचारधारात्मक आग्रह भी व्यक्त हुए। जैनेन्द्र कुमार, डॉ॰ संपूर्णानंद, रामविलास शर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी, नगेंद्र आदि के निबंधों से उनकी वैचारिक दृष्टि का परिचय मिलता है। इन निबंधकारों ने अपने निबंधों के लिए समसामयिक विषय चुने।

जैनेंद्र कुमार प्रसिद्ध कथाकार तो थे ही, निबंध के क्षेत्र में भी उन्होंने ख्याति अर्जित की। उन्होंने सांस्कृतिक, नैतिक और राजनीतिक चिंतन को अपनी विशिष्ट शैली में विवेचनात्मक निबंधों के रूप में प्रस्तुत किया। कहीं-कहीं प्रश्नोत्तर अथवा साक्षात्कार (इंटरव्यू) की पद्धति भी अपनाई गई है। उनके निबंधों की खास विशेषता यह है कि वे समस्या के दार्शनिक पहलू

को लेकर चलते हैं और उसे जीवन के किसी बड़े सत्य से जोड़ देते हैं। इनके निबंध पाठक को एकाएक किसी सुस्पष्ट निर्णय तक नहीं पहुँचाते, बल्कि उसे चक्करदार मार्ग से ले जाकर उलझनपूर्ण स्थिति में छोड़ देते हैं। इनके निबंध 'समय और हम' पुस्तक में संकलित हैं।

डॉ॰ संपूर्णानंद के निबंधों में दार्शनिक विवेचन है, लेकिन उनमें जटिलता नहीं है। 'शिक्षा की समस्या' उनका विचार प्रधान निबंध है।

वैचारिक निबंधकारों में रामधारी सिंह दिनकर का नाम प्रमुख है। उनके निबंध में भारतीय जीवन के सांस्कृतिक, मनौवैज्ञानिक तथा मानवीय पहलुओं की अभिव्यक्ति हुई है। उन्होंने भाषा और साहित्य के मुद्दों पर भी निबंध लिखा है। 'अर्धनारीश्वर', 'हमारी सांस्कृतिक एकता', 'राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय साहित्य', 'रेती के फूल' आदि उनके प्रमुख निबंध संग्रह हैं।

डॉ॰ रामविलास शर्मा के निबंधों में प्रेमचंद और शुक्ल जी दोनों की विशेषताएँ मौजूद हैं। उनमें दो टूक बात कहने की प्रवृत्ति है इसीलिए उन्हें निष्कर्ष तथा निर्णय पर पहुँचने की जल्दी रहती है और बेचैनी भी। उनकी निबंध शैली तीक्ष्ण व्यंग्य से बनी है। भाषा विश्लेषणात्मक किंतु सरल और सहज है। उन्होंने राजनीतिक और सामाजिक विषयों पर भी निबंध लिखे हैं। ऐसे निबंध 'विराम चिह्न' में संकलित हैं।

डॉ॰ नगेंद्र ने अपने निबंधों में मुख्यतः काव्यशास्त्र और साहित्य के गंभीर विषयों को निरूपण के लिए चुना। किंतु साहित्यिक प्रवृत्तियों, शैलियों, कवियों तथा लेखकों पर भी उन्होंने अलग-अलग निबंध लिखे हैं। नगेंद्र जी ने निबंधों के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किए हैं। उन्होंने न केवल उसके कलेवर को निखारा-सँवारा है, वरन उसकी प्राण-चेतना को भी अधिक शक्तिशाली बनाया है। कहीं विवेचना, कहीं संवाद, कहीं गोष्ठी, कहीं स्वप्नजन्य चित्र-विधान, कहीं पत्र लेखन और कहीं आत्मविश्लेषण का आश्रय लेकर उन्होंने अपने निबंध साहित्य को विविध कलात्मक प्रयोगों से सँवारा है। उनकी निबंध रचना में तर्क और भावना का सुंदर संतुलन दिखाई पड़ता है। नगेंद्र जी की भाषा प्रौढ़, प्रांजल, संस्कृतनिष्ठ मानक हिंदी है। उनका वाक्य-विन्यास हिंदी की अपनी प्रकृति के अनुरूप है। वे शब्दों के पारखी और अच्छे प्रयोक्ता हैं। उनके प्रमुख निबंध संग्रह हैं – 'विचार और विवेचन' (1944 ई॰), 'विचार और अनुभूति' (1949 ई॰), 'आस्था के चरण' (1969 ई॰) आदि।

विवेकी राय : स्वातंत्र्योत्तर भारत के एक प्रमुख निबंधकार हैं। उन्होंने देश की स्वतंत्रता के बाद के दौर में विकास-प्रक्रिया की खामियाँ तथा आम लोगों के दुःख, चिंता और सरोकारों पर प्रचुरता से लिखा है। 'मनबोध मास्टर की डायरी' तथा 'फिर बैतलवा डाल पर' उनके प्रतिनिधि निबंध संग्रह हैं। उनके अन्य निबंध संग्रह हैं – 'जुलूस रुका है', 'गँवई-गंध-गुलाब', 'आम रास्ता नहीं है' आदि।

ललित निबंध : ललित निबंध में लालित्य अर्थात सरस शैली के उत्कर्ष पर विशेष बल होता है। निबंधकार अपने भावों और विचारों को इस रूप में प्रस्तुत करना चाहता है कि वह सरस, अनुभूतिजन्य, आत्मीय और रोचक लगे। भाषा शुष्क न हो बल्कि उसमें कल्पनाशीलता, सहजता और सरसता हो। ललित निबंधकार गहरे विश्लेषण, उबाऊ वर्णन, जटिल वाक्य-रचना से बचता है। ललित निबंधों में रचनाकार के व्यक्तित्व की छाप रहती है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का ललित निबंधकारों में प्रमुख स्थान है। उनके निबंधों में मानवतावादी जीवन दर्शन और भावुक हृदय के दर्शन होते हैं। वे अध्ययनशील प्रवृत्ति के थे। उन्होंने संस्कृत के प्राचीन साहित्य के साथ-साथ पालि, अपभ्रंश और बंगला भाषाओं के साहित्य तथा मध्यकालीन हिंदी साहित्य का व्यापक अध्ययन किया था, लेकिन उनकी दृष्टि

आधुनिक थी। इसीलिए उनके निबंधों में पांडित्य के साथ-साथ नवीन चिंतन-दृष्टि भी मिलती है। द्विवेदी जी ने अपनी रचना को विचारों से बोझिल होने नहीं दिया बल्कि भावानुकूलता के आवेग में विचारों को प्रस्तुत कर उसे नया रूप प्रदान किया है। खूबी यह है कि विचार, तर्क और भाव के गठाव में कहीं भी बिखराव और शैथिल्य नहीं आ पाता। जिस प्रकार शुक्ल जी ने विवेचनात्मक निबंधों का स्वरूप संगठित किया था, उसी प्रकार द्विवेदी जी ने अपनी विशिष्ट रचना प्रणाली द्वारा व्यक्तिपरक निबंधों का स्वरूप संगठित किया। उनके निबंधों की भाषा लचीली है। वे देशज शब्दों के साथ संस्कृत के प्रचलित और अप्रचलित शब्दों का सामंजस्य भी बैठा लेते हैं। उनका वाक्य-विन्यास भी ललित और भावपूर्ण गद्य के अनुरूप है। उनके प्रमुख निबंध-संग्रह 'अशोक के फूल', 'विचार और वितर्क', 'कल्पलता' आदि हैं।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अतिरिक्त ललित-निबंधकारों में विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, विवेकी राय आदि प्रमुख हैं।

विद्यानिवास मिश्र संस्कृत भाषा और साहित्य के विद्वान हैं। लोक संस्कृति और लोक साहित्य में भी वे गहरी पैठ रखते हैं। इसलिए उनके निबंधों में पांडित्य (शास्त्र ज्ञान) के साथ-साथ लोक संस्कृति का भी सम्मिलन हुआ है। निबंधों की शैली भावपूर्ण और काव्यमय है तथा भाषा भी वैसी ही काव्यमय और सरस है। भाषा में संस्कृत के ललित शब्दों का प्रयोग हुआ है। 'छितवन की छाँह' से एक उदाहरण प्रस्तुत है :

"छितवन के सौंदर्य में लपट नहीं, आँच नहीं, छलकता हुआ मधुर रस नहीं, मंजरित कलकंठ नहीं और पुलक-स्पर्श नहीं, छितवन में है... गंध, शुद्ध गंध, मिश्रित गंध और पवित्र गंध, वह भी छितवन के एक-एक फूल में अलग-अलग नहीं, उसके समूचेपन में एक साथ है, अविभाज्य और अविकल। छितवन पार्थिव शरीर के यौवन का प्रतीक है, उसकी समस्त मादकता का, उसकी सामूहिक चेतना का, उसके निशेष आत्मसमर्पण और उसके निश्चल और शुभ्र अनुराग का।"

विद्यानिवास मिश्र के प्रमुख निबंध संग्रह हैं – 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है', 'तुम चंदन हम पानी', 'तमाल के झरोखे से', 'संचारिणी', 'लागौ रंग हरि' आदि।

हिंदी के ललित निबंधकारों में **कुबेरनाथ राय** का नाम महत्वपूर्ण है। उनकी दृष्टि आधुनिक है तथा उनके निबंधों में चिंतन और कला-प्रेम की महत्वपूर्ण भूमिका है। कुबेरनाथ राय ने अपने निबंधों में आवेग, विवेचन तथा व्यंग्य का समुचित प्रयोग किया है। उनके निबंधों में रागात्मकता, कल्पना शक्ति का प्रयोग तथा नई उद्भावना प्रायः ही दृष्टिगोचर होते हैं। 'प्रिया नीलकंठी', 'रस आखेटक', 'निषाद बाँसुरी', 'गंध मादन', 'विषाद योग' आदि उनके प्रसिद्ध निबंध संग्रह हैं।

व्यंग्य निबंध : हिंदी में व्यंग्य निबंधों का प्रारंभ भारतेंदु युग में हुआ था। उस दौर में स्वयं भारतेंदु ने तथा प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट आदि ने कई व्यंग्य निबंध लिखे, लेकिन बाद में व्यंग्य निबंध लिखने की परंपरा शिथिल हो गई। यद्यपि आचार्य रामचंद्र शुक्ल, बाबू गुलाब राय, रामविलास शर्मा आदि के निबंधों में व्यंग्य और विनोद का भाव दिखाई पड़ता है किंतु अधिकांश निबंधकारों में वह बात नहीं थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद व्यंग्य निबंध के नए युग की शुरूआत हुई। इसका श्रेय हरिशंकर परसाई को है जिन्होंने व्यंग्य को एक स्वतंत्र साहित्य-रूप की तरह प्रतिष्ठित किया।

व्यंग्य निबंधकार प्रायः समसामयिक विषयों पर लिखता है और उन्हें अपने व्यंग्य का लक्ष्य बनाता है। वह सामाजिक या राजनीतिक समस्या को अपने निबंध में उठाता है, लेकिन वह

उसका न तो वैचारिक दृष्टि से विवेचन करता है और न ही उसका भावात्मक वर्णन करता है। वह समस्या की गहराई में जाकर उसके अंतर्विरोधी पहलुओं को उद्‌घाटित करता है, जो सामान्यतः हमारी पकड़ में नहीं आ पाते या हमारी नजरें उन्हें देख नहीं पातीं। वह उन अंतर्विरोधों को ऐसे प्रस्तुत करता है कि उससे नया अर्थ व्यंजित हो। यह अर्थ सहज नहीं होता, उसमें एक तरह का बाँकपन होता है। इसके लिए रचनाकार एक विशेष प्रकार की हास-परिहास की शैली अपनाता है। वह ऐसे शब्दों का चयन करता है जो व्यंग्य को ध्वनित करें। वह वाक्यों को इस रूप में संगठित करता है कि उससे व्यंग्य को व्यक्त करने वाला अर्थ निकले। पाठक में एक तिलमिलाहट पैदा करे। स्वस्थ व्यंग्य से पाठक को एक नई दृष्टि मिलती है और उसमें सामाजिक राजनीतिक जागरूकता आती है। रुढ़ियों, अंधविश्वासों आदि पर लिखे गए निबंधों से पाठक को सामाजिक सोद्‌देश्यता का संदेश भी मिलता है। हिंदी व्यंग्य लेखकों में हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी, प्रभाकर माचवे, गोपाल प्रसाद व्यास, बरसाने लाल चतुर्वेदी आदि प्रमुख हैं। डॉ॰ नामवर सिंह का 'बकलम खुद' इस दृष्टि से उल्लेखनीय रचना है।

गोपाल प्रसाद व्यास के निबंधों में शुद्ध हास्य का रूप मिलता है। इनके निबंधों में पारिवारिक जीवन की असंगतियों और युग-जीवन की विकृतियों का उपहास उड़ाया गया है और उन पर व्यंग्य भी किया गया है। 'मैंने कहा', 'कुछ सच कुछ झूठ', 'तो क्या होता' और 'हलो-हलो' इनके निबंध संग्रह हैं।

प्रभाकर माचवे के निबंधों में आदर्शों का ढोल पीटने वाले लोगों की स्वार्थपरता, अश्लीलता की पोल खोली गई है, परंतु भाषा में संयम सर्वत्र विद्यमान है। अनेक स्थलों पर भाषा के लाक्षणिक प्रयोग अनूठे बन पड़े हैं जो हास्य के साथ चिंतन भी प्रस्तुत करते हैं– 'अभाव में भाव तो बढ़ता ही है', 'कुछ भी हो लंगड़ा पलायनवादी नहीं हो सकता', 'आप चाहे सुर या असुर कहें, ससुर नहीं कह सकते' इत्यादि। 'खरगोश के सींग', 'बेरंग' और 'तेल की पकौड़ियाँ' इनके निबंध संग्रह हैं। माचवे जी का व्यंग्य पैना और व्यंजक है।

हरिशंकर परसाई के निबंध सोद्‌देश्य हैं जिनके पीछे स्पष्ट वैज्ञानिक दृष्टि है जो समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, दंभ, अवसरवादिता, अंधविश्वास, सांप्रदायिकता, नौकरशाही, शासन के ढीलेपन आदि पर तीव्र प्रहार करती है और व्यक्ति को सचेत रहने की प्रेरणा देती है। परसाई जी के निबंधों में प्रशासनिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक, कलात्मक आदि विषयों पर आकर्षक व्यंग्य की सृष्टि हुई है। 'आँगन के बैंगन' निबंध का एक अंश प्रस्तुत है:

"बर्दाश्त तब नहीं हुआ जब परिवार की एक तरुणी ने कहा – अच्छा तो है। बैंगन खाये भी जा सकते हैं। मैंने सोचा, हो गया सत्यानाश। सौंदर्य, कोमलता और भावना का दिवाला पिट गया।"

हरिशंकर परसाई के निबंध संग्रह हैं – 'तब की बात और थी', 'भूत के पाँव पीछे', 'बेईमानी की परत' 'पगडंडियों का जमाना', 'सदाचार की तावीज', 'शिकायत मुझे भी है', 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र', 'सुनो भाई साधो', ' निठल्ले की डयरी' आदि।

बरसाने लाल चतुर्वेदी कृत 'मिस्टर चोखेलाल' संग्रह में 39 निबंध हैं जिनमें हास्य और व्यंग्य का पुट है। इन निबंधों में जीवन के सामान्य क्रियाकलापों की उन घटनाओं के द्वारा हास्य की सृष्टि की गई है जो नित्य प्रति हमें प्रभावित करती रहती है। भाषण झाड़ने की बीमारी, अभिनेता अथवा नेता बनने की चाह, झूठी हमदर्दी, जोरू की गुलामी, चाटुकारिता जैसे विषयों को इन्होंने अपने निबंधों में प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया है।

शुक्लोत्तर युग में साहित्यिक, भावप्रवण, चिंतनप्रधान उच्चकोटि के निबंध लिखने वाले लेखकों में 'अज्ञेय', कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', शिवप्रसाद सिंह, गजानन माधव मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय आदि प्रमुख हैं।

हिंदी निबंध लेखन की परंपरा अत्यंत समृद्ध है। लेकिन इधर के वर्षों में इस क्षेत्र में नए लेखकों का आगमन बहुत कम हुआ है। ललित, भावात्मक, विचारात्मक निबंध लेखन की प्रवृत्ति में कमी आई है और जो लिख भी रहे हैं वे पुरानी पीढ़ी के ही लेखक हैं। नए लेखकों की निबंध लेखन के प्रति यह उदासीनता चिंताजनक है।

बोध प्रश्न-3

(क) निम्नलिखित विशेषताएँ किस युग के निबंधों पर लागू होती हैं? उस युग और उसके दो प्रमुख निबंधकारों के नाम बताइए।

(i) जिंदादिली और विनोदवृत्ति

युग का नाम .....

निबंधकार का नाम (क) .....

(ख) .....

(ii) वैचारिक गंभीरता और भाषा के परिष्कार का कार्य

युग का नाम .....

निबंधकार का नाम (क) .....

(ख) .....

(iii) गहन वैचारिक विश्लेषण और व्यापक मानवीय दृष्टिकोण

युग का नाम .....

निबंधकार का नाम (क) .....

(ख) .....

(ख) निम्नलिखित निबंधकारों के निबंधों की तीन-तीन विशेषताएँ बताइए :

(i) हरिशंकर परसाई

.....

.....

.....

(ii) राहुल सांस्कृत्यायन

.....

.....

.....

(iii) विद्यानिवास मिश्र

.....

.....

.....

(iv) रामविलास शर्मा

.....

.....

.....

(ग) हिंदी निबंध के विकास में महावीरप्रसाद द्विवेदी के योगदान के कम से कम दो पक्षों का उल्लेख कीजिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

(घ) ललित निबंध की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए हिंदी ललित निबंध परंपरा का परिचय दीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

17.3 सारांश

- निबंध साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है जिसका विकास आधुनिक युग में हुआ। निबंध में लेखक अपने भावों और विचारों को प्रभावशाली भाषा और शैली के माध्यम से अभिव्यक्त कर सकता है।
- आचार्य रामचंद्र शुक्ल को हिंदी निबंध परंपरा का केंद्रीय व्यक्तित्व मानकर इस विधा के विकास को तीन युगों में विभाजित किया गया – शुक्ल पूर्व युग, शुक्ल युग और शुक्लोत्तर युग।
- भारतेंदु युग में समाज सुधार, देशप्रेम आदि को निबंध का विषय बनाया गया। जिंदादिली और विनोद वृत्ति इस युग के निबंधों की प्रमुख विशेषता थी।
- द्विवेदी युग सांस्कृतिक नवजागरण तथा भाषा के परिष्कार का युग है।
- आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंध में उनका चिंतन और मानवतावादी रूप उभरा है। इस युग में इस विधा का बहुआयामी विकास हुआ।
- शुक्लोत्तर युग में हिंदी निबंध की विकास की कई दिशाएँ हैं। इनमें वैचारिक निबंध, ललित निबंध तथा व्यंग्य निबंध प्रमुख हैं।

17.4 उपयोगी पुस्तकें

- *हिंदी वाङ्गमय : बीसवीं शती* – डॉ नगेंद्र (संपादक), विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
- *प्रतिनिधि हिंदी निबंधकार* – डॉ. हरिमोहन, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली

17.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

(क) (i) – ✓

(ii) – ✓

(iii) – ×

(iv) – ✓

(v) – ×

(ख) (i) – प्रताप नारायण मिश्र

(ii) – भारतेंदु हरिश्चंद्र

(iii) – महावीरप्रसाद द्विवेदी

(iv) – चंद्रधर शर्मा गुलेरी

(v) – सरदार पूर्ण सिंह

(ग) देखें – भाग 17·2·1

(घ) देखें – भाग 17·2·1

बोध प्रश्न-2

(क) (i) साहित्य निबंधावली – राहुल सांकृत्यायन

(ii) प्रबंध प्रतिमा – सूर्यकांत त्रिपाटी निराला

(iii) चिंतामणि – आचार्य रामचंद्र शुक्ल

(iv) मेरी असफलताएँ – बाबू गुलाब राय

(v) साहित्य देवता – माखनलाल चतुर्वेदी

(ख) देखें – भाग 17·2·2

(ग) देखें – भाग 17·2·2

बोध प्रश्न-3

(क) (i) भारतेंदु युग – (क) भारतेंदु हरिश्चंद्र (ख) प्रतापनारायण मिश्र।

(ii) द्विवेदी युग – (क) महावीरप्रसाद द्विवेदी (ख) सरदार पूर्ण सिंह ।

(iii) शुक्ल युग – (क) रामचंद्र शुक्ल (ख) गुलाब राय।

(ख) (i) हरिशंकर परसाई
- (क) सोद्देश्य व्यंग्य सृष्टि
- (ख) भाषा पैनी और व्यंग्य व्यंजक
- (ग) वैज्ञानिक दृष्टि

(ii) राहुल सांकृत्यायन
- (क) पांडित्य
- (ख) दो टूक बात कहने के हिमायती (स्पष्टवादी)
- (ग) रसपूर्ण भाषा-शैली

(iii) विद्यानिवास मिश्र
- (क) लोकसंस्कृति और लोक साहित्य का प्रभाव
- (ख) पांडित्य
- (ग) काव्यमय भाषा

(iv) रामविलास शर्मा
- (क) विश्लेषणात्मकता
- (ख) दो टूक ढंग से अपनी बात कहना
- (ग) बोलचाल की भाषा

(ग) देखें – भाग 17·2·1

(घ) देखें – भाग 17·2·3